

5

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-शिक्षा

10-3

ओ३म्

श्रीमद्व्यानन्द कॉलेज प्रबन्धकर्त्री सभा
नई दिल्ली-११००५५

CC-0. In Public Domain. Part of eGangotri Kanya Maha Vidyalaya Collection.

॥ ओ३म् ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-शिक्षा

[भाग-5]

(पाँचवी कक्षा के लिए)

(संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण)

तेरहवों संस्करण

प्रकाशक :

श्रीमद्दयानन्द कालेज प्रबन्धकर्त्ती समिति

चित्रगुप्त मार्ग, नई दिल्ली

(सन् 1993)

मूल्य 4-75 रु०

Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

आर्य समाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।
२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि-कर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।
३. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए ।
५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहियें ।
६. संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।
७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए ।
८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।
९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए । किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।
१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

जब तक कोई देश पराधीन रहता है, तब तक चाहे कोई कितना ही परिश्रम कर ले वह अपने अनुकूल वातावरण नहीं बना सकता। सभी देशों पर यह नियम एक सा लागू होता है। भारत धर्म निरपेक्ष देश जैसा आज है उसी प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व था पर उस समय कुछ और स्थिति थी। यह सब कुछ होते हुए भी विदेशी शासन होने के कारण उसका आधार ईसाई मत था। अन्य कार्यों के साथ-साथ शिक्षा का कार्य भी ईसाई पादरियों के हाथ में था। इसलिए उस समय की शिक्षा के लिए इस प्रकार का पाठ्यक्रम तैयार किया जाता था जिस से ईसाई धर्म का प्रचार हो तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विस्मृति। फलतः अधिकांश भारतीय शिक्षित नवयुवक ईसाई मत से प्रभावित हो रहे थे। वे अपनी सभ्यता के अथाह भण्डार को भूल गये थे। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई मत का प्रचार बढ़ रहा था। शिक्षा की यह दशा देख कर आर्य समाज ने संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा हेतु श्रीमद्दयानन्द कालेज की स्थापना की। भारत के भावी नागरिक अपने को आर्य समर्थ तथा आर्यत्व की भावना से ओत-प्रोत रहते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करें हेतु इस प्रकार की धर्म शिक्षा की पुस्तकों को प्रकाशित करवाया जिनसे वे अपने पूर्वजों को पहचानते हुए अपने को ईसाई धर्म रूपी पतन के गर्त से बचा सकें। आवश्यकतानुसार जिस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशन किया गया आज उसका नवीन संस्करण बच्चों के हाथ में देते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। यह पुस्तक पांचवी कक्षा के पाठ्यक्रम अनुसार लिखी गई है। इसे पहले से भी अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कि नवीन संस्करण विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी होगा।

विषयानुक्रमिका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या	पाठ का नाम	पृष्ठ
1.	तुम हो प्रभु चांद (भजन)	1
2.	बड़ों की आज्ञा मानो	2
3.	रावण का उपदेश	4
4.	सत्यवादी हरिश्चन्द्र	6
5.	क्यों दीनानाथ (भजन)	8
6.	महाराज युधिष्ठिर	9
7.	गुरु भक्ति	14
8.	आर्यों के पर्व—भाग-क	17
9.	आर्यों के पर्व—भाग—ख	19
10.	आर्यों के पर्व—भाग-ग	23
11.	वीर पूजा पर्व	31
12.	नीति के दोहे	34
13.	सदाचार—भाग-क	35
14.	सदाचार—भाग ख	40
15.	हे दयाधाम (भजन)	45
16.	सद्ग्यवहार	46
17.	बालकों के गीत	53
18.	संस्कार	54
19.	वेदों की महिमा	60
20.	उत्तम शिक्षाएँ (दोहे)	63
21.	मर्यादा पुरुषोत्तम राम	64
22.	पतित उधारन द्वार (भजन)	70
23.	श्रीकृष्ण. महाराज	71
24.	भीष्म पितामह	78
25.	प्रार्थना-मन्त्र	82

पाठा।

॥ गीता ॥ भजन कि हि।

तुम हो प्रभु चांद में हैं चकोरा,
 तुम हो कमल-फूल सैं रस का भोला।
 ज्योति तुम्हीं की काँ में हूँ पसीरा,
 आनन्दधन तुम हो, मैं वन का भोला।

जैसे हैं धुमकान्को लोहे से श्रुति,
 मुझे खींच लेवे प्रभु प्रेम तोरा।
 सुनी बिना जैसे हो मीना व्याकुल,
 इसी भाँति तू पाय तोरी बिछोड़ी।
 तेरे प्रेम जल का मैं प्यासा हूँ प्यारे,

करी प्रेम वर्षा हिरो ताप भोला।
 इस जल का भोला भोला जल।
 इस जल का भोला भोला जल।
 इस जल का भोला भोला जल।
 इस जल का भोला भोला जल।

पाठ 2

बड़ों की आज्ञा मानो

एक तालाब में कछुआ रहता था। उसके दो मित्र बन गए। दोनों हंस पक्षी थे। वे दोनों हंस घूम फिर कर कुछ समय मित्र के साथ समय बिताने के लिए आ जाते थे। सायं काल को कछुआ पानी में चला जाता और दोनों हंस उड़कर अपने स्थान को। इसी प्रकार दो-तीन वर्ष बीत गये।

एक साल वर्षा न हुए। तालाब का पानी सूखने लगा। बेचारा कछुआ चिंतित होने लगा—यदि इसी प्रकार सारा तालाब सूख जायेगा तो मैं कहीं का न रहूंगा, इसलिए आने वाली विपदा को दूर करने के लिए मुझे पहले ही प्रबन्ध करना चाहिए। जो लोग आने वाली कठिनाई को पहले ही समझ लेते हैं और उसका प्रबन्ध कर लेते हैं, वे सुखी रहते हैं।

दूसरे दिन उसके दोनों मित्र आये, तो उसने अपनी चिन्ता कह सुनाई—मित्रो ! यह तालाब सूखता जा रहा है। इस बात की मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। दोनों ने कहा—मित्रवर चिन्ता की कोई बात नहीं। हम एक पतली-सी लकड़ी लाते हैं उसे बीच में तुम अपने मुंह में पकड़ लो।

दोनों ओर से उसे हम अपनी चोंच में पकड़ लेंगे और आकाश में उड़कर तुम्हें एक बहुत बड़े तालाब पर ले जायेंगे। वहाँ आनन्द से रहना।

मित्रवर ! हम तुम्हें सावधान करते हैं कि रास्ते में बोलना नहीं, यदि बोलोगे तो गिरकर मर जाओगे। उसने कहा—मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। वे दोनों उसे लेकर उड़ पड़े। उड़ते हुए एक गांव के ऊपर से निकले। ग्रामीण लोग उन्हें देखकर कहने लगे—देखो, दो पक्षी किसी प्राणी को उड़ा कर ले जा रहे हैं। यदि यह गिर जाय तो इसे आज पका कर खायें।

यह सुन कर कछुवे को क्रोध आ गया और वह बोल उठा तुम खाक खाओ। बस यह कहते ही वह भूमि पर गिर पड़ा। ग्रामीणों ने उसे मार डाला।

शिक्षा—बच्चो। जो मनुष्य हित चाहने वाले बड़े लोगों अर्थात् माता-पिता तथा मित्रों की शिक्षा को नहीं मानता वह सदा विपत्तियों का शिकार बनता है।

पाठ 3

सविण का उपदश

लक्ष्मण हाथ जोड़कर रावण के पास खड़ा हो गया और तनूता से कहने लगा।

॥ लक्ष्मण—लंकापति ! मैं राम का छोटा भाई लक्ष्मण हूँ । आप वेदों तथा शास्त्रों के महान पण्डित हैं । इसलिए कृपा करके मुझे कुछ शिक्षा दीजिए ।

रावण—लक्ष्मण ! तुम मेरे शत्रु हो, परन्तु मेरे पास शिक्षा लेने के लिए आये हो । धर्म से प्रेम करते हो । मैं भी ब्राह्मण हूँ इसलिए मैं तुम्हें अवश्य वेदों के अनुकूल शिक्षा देना चाहता हूँ । मेरे जीवन के क्षण अब बहुत थोड़े रह गए हैं ।

मैं एकाध ही बात कह पाऊंगा, यदि तुम उस पर आचरण करोगे, तो बड़ा लाभ होगा। मेरी शिक्षाएँ ये हैं—

1. संसार को जीतने से पहले अपनी इन्द्रियों और मन को जीतना चाहिए। लक्ष्मण ! मैंने संसार के बड़े-बड़े वीरों पर विजय पाई; परन्तु अपनी को नहीं जीता। अपनी इन्द्रियों और मन का दास बना रहा। इसी कारण आज मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। वेदों का विद्वान्, होकर भी मैं पाप करता रहा।

(इस वक्त में रावण)

लक्ष्मण ! तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

2. जिस अच्छे काम को आज कर सकते हो, उसे आज ही करो। कल पर मत छोड़ो। मैंने सोचा था कि मैं जीवन में कई अच्छे काम करूँगा, परन्तु मैं उन्हें टालता गया और अन्तिम तक नहीं कर पाया।

(इस वक्त में रावण)

लक्ष्मण ! तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

। तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

लक्ष्मण ! तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

हे रावण ! तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

। तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

(इस वक्त में रावण)

लक्ष्मण ! तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

। तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

। तूने मुझे (मेरी) शिक्षाएँ (सुनीं)।

पाठ 4

संत्यवादी हरिश्चन्द्र

(समय प्रातःकाल, राजा हरिश्चन्द्र अपने सोने वाले कक्ष में बैठा है)

राजा हरिश्चन्द्र—(चिन्तित दशा में) प्यारी शैव्या ! आज मैंने अद्भुत स्वप्न देखा है ।

शैव्या—महाराज सुनाइए । वह स्वप्न क्या है ?

हरिश्चन्द्र—शैव्या ! रात को स्वप्न में मैंने किसी ब्राह्मण को अपनी अयोध्या का सारा राज्य दान कर दिया है । यदि स्वप्न में की गई इस प्रतिज्ञा को पूरा न कर सकूँ तो मैं असत्यवादी कहलाऊँगा ।

शैव्या—महाराज ! क्या स्वप्न में की गई प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहते हो ? यह कोई अच्छी बात है ? कई बार यूँ ही झूठे स्वप्न आया करते हैं ।

(विश्वामित्र का प्रवेश)

विश्वामित्र—महाराज मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ । इसके लिए आप मुझे समस्त राज्य का दान दें । आप का कल्याण होगा ।

हरिश्चन्द्र—महाराज ! मेरी प्रतिज्ञा है—

“चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार ।
पर सत्य हरिश्चन्द्र का टरे न सत्य विचार ॥”

लो, समस्त राज्य आपको दान करता हूँ ।

विश्वामित्र—आनन्दित रहो महाराज ! किन्तु इस महादान
के साथ दक्षिणा भी चाहिए, क्योंकि बिना
दक्षिणा दान सफल नहीं होता ।

हरिश्चन्द्र—(मन्त्री को बुलाकर) मन्त्री जी ! राजकोष से
ऋषिराज को दक्षिणा दिला दो और आज से
इस राज्य के स्वामी महाराज विश्वामित्र
होंगे ।

विश्वामित्र—महाराज ! समस्त राज्य मेरा हो गया, तो
राजकोष पर आपका कोई अधिकार नहीं रहा ।
दक्षिणा तो उससे अलग होगी ।

हरिश्चन्द्र—महाराज ! क्षमा कीजिए । मैं आपकी दक्षिणा
एक मास में चुका दूंगा । मैं अपनी प्यारी पत्नी
और पुत्र के साथ वाराणसी में नौकरी करूंगा,
धन कमाकर आपको दक्षिणा दे दूंगा ।



भजन

आश्रित तेरी। नहीं हूँ कि तेरी। अजनबी नहीं।

मति नहीं है, बन्धु नहीं है, पिता नहीं ।

कुछ उनसे कम भी तो तेरी दया नहीं।

करुणा करोगे क्या मेरे भाँस ही देख कर,

जन्तोर्गत्तर्हि तस्याः किं ह्यैकीक्षोः का तुम्हको मुक्ते, न-न १७१।३

तुम भी शरण न दीगे तो जऊंगा हाथ कहा,

अच्छी हू या बुरी हू किसी और की नहीं ।



महाराज युधिष्ठिर
पाठ 6

महाराज युधिष्ठिर

निम्नलिखित है। यह निम्नलिखित है। निम्नलिखित है।
। हस्तिनापुर में महाराजा दान्तनु राज्य करते थे। उनके
दो पुत्र थे। धृतराष्ट्र और पाण्डु। धृतराष्ट्र मन्त्रे थे। अतः
वे राजा न बन सके। शातनु की मृत्यु पर पाण्डु को राज्य
दिया गया। इनके सात पुत्र कुन्ती और साद्वी नाम की दो
रानियों से उत्पन्न हुए। इन सातों के नाम थे—युधिष्ठिर,
भीम, धर्मरत्न, नकुल और सहदेव। पाण्डु प्रायः तीसरा रहा
करके, अतः उत्तक स्वर्गवास हो गया। इस राज्य के
उत्तराधिकारी महाराज युधिष्ठिर बने।

दूसरी धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुशासन आदि सी पुत्र
थे। दुर्योधन बड़ा वीर तथा साहसी था वह पाण्डवों को
देखकर ईर्ष्या से जला करता था। इसके साथी वे ही थे जो
इसकी हर बात में हाँ में हाँ मिलाया करते थे। उसमें राजाओं
सी विलासिता के चिन्ह दिखाई देने लगे थे। वे लोग मन
बहलाने के लिए जुआ भी खेलते थे। यह भारत तथा प्रायः
जाति का दुर्भाग्य था। यही कारण है कि युधिष्ठिर जैसे
सत्यवादी धर्मात्मा तथा भलाई बुराई को समझने वाला
व्यक्ति भी इस पाप के छूटने का नकार देता है।

एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए

बुलाया ताकि घोखे से उससे राज्य हथिया लिया जाए, युधिष्ठिर उस जुए में सारा राज्य हार गया। पांडवों को १२ वर्ष का बनवास तेरहवें वर्ष के लिए अज्ञात वास दिया गया।

वे सभी भाई वनों में मारे-मारे घूमने लगे। दुर्योधन अपनी शान दिखाने के लिए अपने साथियों के साथ वन में गया। वहां एक सरोवर में जल विहार करते हुए चित्ररथ नाम के गन्धर्व जाति के किसी वीर से मुठभेड़ हो गई। निदान गन्धर्वराज उसे साथियों सहित बन्दी बनाकर अपने राज्य में ले चला। इस घटना की सूचना पाण्डवों को मिली। सभी इस घटना से बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु युधिष्ठिर ने कहा—भाईयों! अभी जाओ और उन्हें विदेशी की कैद से छुड़ाकर लाओ। उन्होंने कहा—महाराज! आप तो भोले हैं। हमने जो कुछ करना था वही तो गन्धर्वों ने कर दिया है। चलो भाई पाप कटा। न होगा बांस न बजेगी बांसुरी।

युधिष्ठिर ने कहा—भाईयों! यदि हम आपस में लड़े तो हम पांच भाई हैं और वह सौ भाई। ये विदेशी हैं। यदि इनसे लड़ना हो तो हम एक सौ पांच हैं, इसलिए अभी जाकर दुर्योधन को गन्धर्वों से छुड़ा लाओ।

बालको! इसी प्रकार यदि कोई दूसरा विदेशी हमारे ऊपर आक्रमण करे तो हमें मिलकर उसके दांत खट्टे करने चाहिए ताकि शत्रु को नानी याद आ जाए।

दूसरी घटना

एक बार, जब महाराज युधिष्ठिर अपने भाईयों के साथ वनों और पहाड़ों पर घूम रहे थे, उन सबको प्यास ने सताया। पहाड़ सूखे थे। कहीं भी समीप में जलाशय नहीं था। भीमसेन ने पानी की खोज में एक पहाड़ी पर चढ़कर देखा कि पक्षी आकाश से उतरते हैं और फिर आकाश में उड़ने लगते हैं। उसने अनुमान लगाया कि यहाँ कोई जलाशय है।

भाई की आज्ञा पाकर भीम उस ओर चल पड़ा। देखा तो एक महान सरोवर है। प्यास से व्याकुल तो था ही। ज्यों ही पानी पीने लगा, त्यों ही एक ध्वनि सुनाई दो। सावधान ! पानी न पीना; नहीं तो बेसुध हो जाओगे। भीम ने इस ध्वनि को अनसुना कर दिया और पानी पी लिया। वह पानी पीते ही बेसुध हो गया। इसी प्रकार अर्जुन आदि बाकी दोनों भाई भी वहाँ पहुँचे। सभी की वही दशा हुई।

युधिष्ठिर चिंतित होकर स्वयं सरोवर पर पहुँचा। वहाँ चारों भाई मूर्छित पड़े थे। प्यास बहुत लगी थी। ज्यों ही पानी पीने लगे, त्यों ही शब्द सुनाई दिए—ठहरो युधिष्ठिर! पानी पीने से पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो, अन्यथा तुम्हारी अपने भाईयों के समान दशा हो जाएगी। रोकने वाला यक्ष जाति का एक जिज्ञासु था।

१. यक्ष—स्वर्ग से बढ़कर कौन-सी वस्तु है ?

युधिष्ठिर—मातृभूमि तथा माता स्वर्ग से बढ़कर है ।

यक्ष—भूमि से बढ़कर किसका गौरव है ?
युधिष्ठिर—भूमि से बढ़कर माता है ।
माता परमपिता के प्रतिविम्बि जग में
माता पिता हैं हमारे ।
माता प्रेम से बने रहते, माता का नाम
शिशु का मालन पोषण सा है ॥ १५ ॥

माता प्रेम मूर्ति हैं जग में,

मृत्ते का मुँह चुम सधाती ।
कहीं गिरे या रोये क्षण भर,
दौड़ उसे वह गोद उठाती ॥ २॥

यक्ष—संसार में कौन सुखी रहता है ?
युधिष्ठिर—जिसने किसी का श्रेण नहीं देना, वह ।

४. यक्ष—किसको अपर्ण वंश में करके अनुष्य विजयी
पाता है ।

युधिष्ठिर—अपर्ण वंश में करके अनुष्य विजयी
होती है ।
यक्ष—असन्न होकर कलह युधिष्ठिर, मैं तुम्हारे इतने
भाईयों में से एक को भला चंगा करना चाहता हूँ ।

וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל
 וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל

पाठ 7

गुरु-भक्ति

आओ बच्चों ! आज हम तुम्हें एक गुरु भक्त बालक की कथा सुनाएँ। हमारा भारत ऐसे गुरु भक्त तथा गुरुओं की आज्ञा का तन मन से पालन करने वाले शिष्यों की खान थी। महर्षि दयानन्द जी की गुरु भक्ति की घटनाएँ तो आपने पढ़ी हैं, जिन्होंने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए सारा जीवन अर्पित कर दिया था।

महर्षि दयानन्द के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व आरुणि नाम का एक विद्यार्थी था। वह आचार्य घौम्य का शिष्य था। ये महर्षि घौम्य, संसार प्रसिद्ध तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य थे। इस तक्षशिला के खण्डहर अभी तक रावलपिंडी (पाकिस्तान) में पाये जाते हैं। यहां संसार भर के विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। यहां ही सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री चाणक्य ने शिक्षा प्राप्त की थी और यहीं पढ़ाते भी रहे।

आरुणी की अपने गुरुओं पर बड़ी श्रद्धा थी। वह समझता था कि "गुरुशुश्रूषया विद्या" अर्थात्—गुरु की सेवा सुश्रूषा से

ही विद्या प्राप्त होती है। मनुष्य भूमि को खोदकर की जल प्राप्त कर सकता है। परन्तु गुरु की सेवा से तो गुरु के हृदय से स्वयं विद्या का स्रोत फूट पड़ता है। गुरु महाराज की आज्ञा उनके लिए परमपिता परमेश्वर की आज्ञा के समान थी।

एक दिन आचार्य धौम्य ने आरुणि को आज्ञा दी—बेटा आरुणि ! बड़े वेग से वर्षा हो रही है। ऐसा न हो कि हमारे खेत की मेड़ टूट जाए और खेत में पानी घुसकर हमारी खेती चौपट कर दे। गुरु की आज्ञा पाकर आरुणि विद्यालय से निकल पड़ा और खेत में आ पहुँचा। क्या देखा कि सचमुच पहाड़ी पानी का प्रवाह मेड़ को तोड़कर खेत में घुस रहा है। उसने बड़ा प्रयत्न किया कि पानी को खेत में घुसने से रोका जाए, परन्तु उसका कड़ा परिश्रम सफल न हो सका।

जब उसे कोई दूसरा उपाय न सूझा तो उस टूटी हुए मेड़ के आगे लेट गया। सारी रात वहीं सर्दी में पड़ा रहा। प्रातःकाल जब विद्यालय के विद्यार्थी यज्ञ तथा संध्या के लिए उपस्थित हुए तो आचार्य ने देखा उनमें आरुणि उपस्थित नहीं है। पूछ-ताछ करने पर उन्हें स्मरण हो आया कि गत दिन ढलते उसे खेत की मेड़ देखने के लिए भेजा था विदित होता है कि वह अभी तक लौटा नहीं।

गुरु जी घबरा गए और शिष्यों के साथ स्वयं खोज के लिए निकले। आरुणि, आरुणि ! कई बार पुकारा, परन्तु

कोई उत्तर न मिला। 'आगे बढ़े' तो आरुणि को खेत के मैदान में
अचित दिशा में पाया। शिष्यों ने आगे जलाई और आरुणि को
तिपाया, तो उसकी आँख खुली। 'गुरुजी को' सोमने खड़ा
देखकर उसने चरणों में प्रणाम किया। 'गुरुजी के' पूछने पर
आरुणि ने सारी घटना कह सुनाई। गुरुजी उसकी गुरु भक्ति
पढ़ अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे गले लगा आशीर्वाद दिया।

उसी दिन से गुरुजी आरुणि को अत्यन्त स्नेह से दिन-रात
पढ़ाने लगे। अपनी सभी विद्याएँ कुछ वर्षों में ही उसे पढ़ा
दीं। वह एक प्रकाण्ड विद्वान बन गया। अन्यथा वह स्वर्ण
युग जबकि गुरु और शिष्यों के ऐसे सम्बन्ध थे।
निबन्धों! अपनी गुरु का आदर करो। वे तुम्हारी भक्ति
से प्रसन्न होकर तुम्हें हृदय खोलकर विद्या पढ़ाएंगे। इसी से
तुम भी महान् विद्वान बनकर संसार में कीर्ति और सम्मान
को प्राप्त करोगे।

इस दिन से गुरुजी आरुणि को अत्यन्त स्नेह से दिन-रात
पढ़ाने लगे। अपनी सभी विद्याएँ कुछ वर्षों में ही उसे पढ़ा
दीं। वह एक प्रकाण्ड विद्वान बन गया। अन्यथा वह स्वर्ण
युग जबकि गुरु और शिष्यों के ऐसे सम्बन्ध थे।
निबन्धों! अपनी गुरु का आदर करो। वे तुम्हारी भक्ति
से प्रसन्न होकर तुम्हें हृदय खोलकर विद्या पढ़ाएंगे। इसी से
तुम भी महान् विद्वान बनकर संसार में कीर्ति और सम्मान
को प्राप्त करोगे।

के प्रति प्रेम का भाव है। गुरुजी के प्रति प्रेम का भाव है।
गुरुजी के प्रति प्रेम का भाव है। गुरुजी के प्रति प्रेम का भाव है।

पाठ 8

आर्यों के पर्व [त्यौहार]

भाग (क)

पर्वों की रूपरेखा

प्रत्येक वर्ष में कई एक पर्व मनाये जाते हैं। संस्कृत में इसका अर्थ है भाग। जैसे जीवन के कई भाग हैं। उदाहरण के रूप में आप गन्ने को लीजिए। दो-तीन मीटर लम्बे गन्ने में अनेकों पोर होते हैं। कुछ एक पर्व तो ऋतुओं से सम्बन्ध रखते हैं, कुछ एक ऐतिहासिक घटनाओं से। इन्हें हम चार भागों में बांट सकते हैं—

1. ऋतु सम्बन्धी पर्व।
2. ऐतिहासिक पर्व।
3. वीर पूजा सम्बन्धी पर्व।
4. धार्मिक पर्व।

1. ऋतु सम्बन्धी पर्व

भारत में छः ऋतुएं होती हैं, सबसे पहला स्थान वसंत ऋतु का है। शीतकाल के मध्य लोहड़ी का पर्व आता है। शीतकाल के आरम्भ में दीपावली।

2. एतिहासिक पर्व

(क) श्रावणी, (ख) विजय दशमी।

3. वीर पूजा का पर्व

(क) ऋषि बोधोत्सव, (ख) दीपावली, (ऋषि निर्वाण दिवस) (ग) रामनवमी, (घ) कृष्ण जन्माष्टमी, (ङ) महात्मा हंसराज जन्म दिवस (च) स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस।

4. धार्मिक पर्व

रक्षा बन्धन।

पर्वों की महिमा

पर्वों का दूसरा नाम है—'त्यौहार'। त्यौहार मानव जीवन में उत्साह बढ़ाते हैं। त्यौहारों को आर्य लोग बड़ी धूमधाम से मना कर एक नई स्फूर्ति अपने हृदयों में भर लेते हैं। उनसे प्राचीन संस्कृति के प्रति श्रद्धा उपजती है। वीर पुरुषों के पर्व तो मनुष्य की कायापलट कर देते हैं। महापुरुषों के चरित्रों को सुनकर एक नई प्रेरणा मिलती है। सारा दिन अपने काम-धन्धों में निमग्न रहने वाले लोगों का जीवन सरस हो जाता है।

जहां स्फूर्ति मिलती है, वहां मनोरंजन भी होता है। बसंतोत्सव को खुशियाँ, होली की क्रीड़ाएँ और यज्ञ आनन्द भर देती हैं। जीवन की थकावटें दूर हो जाती हैं। जिस जाति के लोग पर्व में भाग नहीं लेते, वे मृतक के समान हैं। अतः हमें सभी पर्व बड़ी धूमधाम से मनाने चाहिए।

पाठ 9

आर्यों के पर्व

भाग ख

(आर्यों के पर्वों का संक्षेप)

1. बसंत का पर्व

यह पर्व माघ के महीने में शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को मनाया जाता है। यह प्रायः जनवरी के अन्त में या फरवरी के आरम्भ में मनाया जाता है। शीत ऋतु की समाप्ति के पश्चात् बसन्त ऋतु आती है।

शीतकाल की कड़कड़ाती सर्दी से मनुष्य, पशु, तथा वनस्पतियां दुखित होकर कष्ट का अनुभव करते हैं। बसन्त के प्रारम्भ होते ही भूमि पर बसन्ती फूल खिल उठते हैं। सूखे हुए वृक्ष लहलहाने लगते हैं।

शरीर में नई स्फूर्ति, नई उमंगें पैदा हो जाती हैं, इन

दिनों स्थान-स्थान पर मेले लगते हैं।

हकीकतराय की समाधि पर इकट्ठे होकर लोग उस धर्मवीर को श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं। यह वही पवित्र दिन है, जिस दिन बालक हकीकत का बलिदान हुआ था। धर्मवीर ने मुस्लिम धर्म स्वीकार न करके हिन्दू धर्म के लिए प्राण-दण्ड स्वीकार किया था।

प्राचीन समय में हमारे आर्य राजा, महाराजा अपने प्रजाजनों से मिलकर बसन्तोत्सव मनाया करते थे। कई प्रकार के नाटक किए जाते थे, यज्ञ होते थे। इस त्यौहार को आर्य जाति सहस्रों वर्षों से मनाती आ रही है।

2. होली का पर्व

इसका प्रारम्भ होली से होता है। यह त्यौहार केवल मनोरंजन के लिए होता है। इसका रूप अब बिगड़ गया है। लोग एक-दूसरे पर रंग फेंकते हैं। सम्भवतः यह त्यौहार बन्धुओं के परस्पर मिलने-जुलने का है। 'वेद में शतं हिमाः' कहकर सौ वर्ष जीवित रहने की परम्परा ने मनुष्य को आज्ञा दी है। जब शीतकाल बीतता है तो आर्य लोग समझते हैं कि हम भगवान की आज्ञाओं का पालन करके शीतकाल आनन्द से बिता चुके हैं। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति हर्ष और उल्लास से इसे मनाया करता था।

आर्यों का इतिहास अति प्राचीन है। आर्यों के जीवन में

दो नव सस्येष्टि (नये अन्नों से) यज्ञ किये जाते थे। एक यज्ञ मक्की आदि के अन्न से लोहड़ी के दिन आर्य लोग किया करते थे और दूसरा यज्ञ चने के नये उपजे याग्रों से किया जाता था। इसी यज्ञ का बिगड़ा हुआ रूप आज "होली जलाना" समझा जा रहा है। इसी प्रकार उत्तम-उत्तम भावनाओं का स्वरूप होली का त्योहार है।

3. लोहड़ी का पर्व

यह पर्व प्रत्येक वर्ष के पौष मास की अन्तिम तिथि को मनाया जाता है। यह दिन जनवरी मास की 13-14 तिथि को होता है।

(क) इस दिन सर्दी पूरे यौवन पर होती है। प्राचीन विद्वानों ने सर्दी में आग को अमृत माना है। 'अमृत शिशिरे वन्हि' इसलिए आग जलाई जाती है।

(ख) नए-नए अन्न पक कर तैयार हो जाते हैं। अर्थात् चावल, तिल, मक्की, उड़द, मूग, अरहर इत्यादि धानों के साथ गुड़ मिलाकर बड़ा यज्ञ किया जाता है। इन अन्नों की कुछ एक आहुतियां दी जाती हैं। इस नवसस्येष्टि में सम्मिलित होने वाले सभी लोग मक्की, तिल, गुड़ तथा चावलों के चिढ़वे खाते हैं। जिसके घर नये शिशु का जन्म हो वह सभी बन्धुओं को घर बुलाता है और यज्ञ के पश्चात् गुड़ और शक्कर तथा तिल मिश्रित रेवड़ियां भी बांटता है। मक्की फुल्ले चबाते हुए सुन्दर मनोरंजन किया जाता है और अतिथि

लोग नये शिशु को आशीर्वाद तथा उपहार देते हैं ।

(ग) समयानुसार इस पर्व का रूप बदल गया । गांव तथा नगरों के बालक घर-घर से लकड़ी तथा कुछ ईंधन आग जलाने के लिए इकट्ठा करके 'लोहड़ी' जलाने लगे । नवयुवक उस पर पटाखे चलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे ।

(ख) हमारा देश वीरों का देश है । इस दिन नौजवान दो टोलियों में बंट कर एक कृत्रिम युद्ध करते हैं । जो दल लोहड़ी उठाकर ले जाए, उसकी जीत मानी जाती है ।

—:०:—

पाठ 10

आर्यों के पर्व

भाग (ग)

[ऐतिहासिक पर्व]

1. श्रावणी का त्यौहार

‘श्रावणी’ विद्वानों का पर्व है। वनों में रहने वाले ऋषि-महर्षि बनवास छोड़कर ग्रामों तथा नगरों में चातुर्मास्य (वर्षा के चार महीने) बिताने के लिए आ जाया करते थे। वहां कुछ मास बिताते हुए लोगों को उपदेश देते थे। श्रावण मास की पूर्णमासी के दिन लोगों से वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय की प्रतिज्ञा भी लेते थे। आजकल आर्य समाजों में वेद सप्ताह मनाया जाता है। आर्य नर-नारी आर्य समाज के मन्दिर में प्रातःकाल एकत्रित होते हैं। अपने यज्ञोपवीत बदलकर यज्ञ करते हैं। पुनः पुरोहित इनसे वेदों के स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा कराता है।

हम लोग वेद को ईश्वर द्वारा दिया गया ज्ञान मानते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने अपने दस नियमों में तीसरे नियम में कहा है—‘वेद सब विद्याओं की पुस्तक है।’ उसका

प्रढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आयों का 'परम-धर्म' है। इसी विचार से प्राचीन मर्यादा के अनुसार रक्षा-बन्धन भी मनाया जाता है।

समय बीतने पर पुरोहित लोग यजमानों को 'राखी' बांधने लगे। इस दिन बहनें अपने भाइयों को 'राखी' बांधती हैं। इसमें दो विचार पाये जाते हैं। (क) बहनें भाइयों की शुभ-कामनाएँ चाहती हुई उन्हें आशिर्वाद देती हैं कि हे भ्राता ! उन्नति को पाओ और आयु बढ़े। (ख) बहनें भाइयों को राखी बांधकर उनसे बहनों की रक्षा करते रहने की प्रतिज्ञा कराती हैं। रणक्षेत्र में जाते समय आजकल भी रक्षा-बन्धन किया जाता है।

2. विजय दशमी का पर्व (वीरों का त्यौहार)

महाराजा रामचन्द्र जी ने रावण पर लंका में विजय पाई थी। यह आयों की राक्षसी सभ्यता पर विजय थी। यह वीरों का त्यौहार है। प्राचीन समय में वीर लोग इस दिन अस्त्र-शस्त्र का प्रदर्शन ठीक इसी प्रकार करते थे, जैसे कि आजकल 26 जनवरी के दिन भारत की राजधानी दिल्ली में वीर जवान प्रदर्शन करते हैं।

यह पर्व बहुत प्राचीन काल से आर्य लोग इसी प्रकार

मनाया करते थे। जब महाराज रामचन्द्र जी ने रावण पर विजय प्राप्त की, तब से इसका नाम 'विजय दशमी' पड़ गया। यह पर्व आश्विन सुदी दशमी को समस्त भारत में मनाया जाता है। रावण एक महान विद्वान था। यह पुंलिङ्गि ऋषि का पोता था। वह सदाचारी न होने के कारण ही राक्षस कहलाया। वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करके ही राक्षस बना। बुराई के कारण ही इसका सगा भाई विभीषण छोड़कर श्रीराम का साथी बना। मनुष्य में वीर, वानर जाति के महान वीर सुग्रीव और हनुमान आदि ने राम का साथ दिया।

इस दिन श्रीरामचन्द्र जी के कार्यों की लीलाएँ की जाती हैं। श्री राम के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएँ दिखाई जाती हैं। दशमी के दिन रावण और कुम्भकरण के पुतले बनाकर जलाये जाते हैं। आर्यसमाजों में विजय दशमी को मनाने के लिए श्री रामचन्द्रजी के जीवन पर व्याख्यान होते हैं।

3. दीपावली (ऋषि निर्वाण दिवस)

इस पर्व के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने भौतिक शरीर को छोड़ा था। इसलिए इसे 'ऋषि निर्वाण दिवस' कहते हैं। भारत भर आर्य समाजों में कार्तिक मास की अमावस को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।

किसी कवि ने कहा है—

जब तू आओ जगत में, जग हंस तुम रोये ।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हंसो जग रोये ।

अर्थात् हे मनुष्य जब तू संसार में उत्पन्न हुआ था, तब तू रो रहा था और लोग तेरे जन्म पर प्रसन्न होकर हंस रहे थे । अब तू ऐसे लोकोपकार के काम कर कि तू प्रसन्नता से संसार से कूंच करे । संसार तुम्हारी मृत्यु पर बिलख-बिलख कर रोए । सचमुच महर्षि दयानन्द एक ऐसा महामानव था, जिसके लिए समस्त आर्य जगत् आज भी उसके कार्यों का स्मरण करके फूला नहीं समाता । आज भी उनके आगे सिर झुका जाता है ।

उन्होंने संसार भर में ज्ञान की ज्योति जगा दी, पाखण्डों की जड़ काट डाली । वेदों का सच्चा उपदेश दिया । अन्त में आज के दिन 'हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' यह कहकर अन्तिम सांस लिया । आज के दिन बड़े-बड़े धर्मात्मा तथा भारत के नेता उन्हें श्रद्धांजलियां देते हैं, यज्ञ किये जाते हैं और हम महर्षि दयानन्द के उपकारों को स्मरण करते हुए उस पवित्र आत्मा को धन्यवाद देते हैं ।

(क) कई लोग इसे वैश्यों का त्यौहार कहते हैं, क्योंकि बड़े-छोटे व्यापारी लोग आज के दिन नये बही-खाते लगाते हैं और वर्ष भर के आय-व्यय का व्यौरा तैयार किया जाता है । रात को धन की देवी लक्ष्मी का पूजन करते हैं ।

(ख) कई लोगों का विचार है कि आज का दिन 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस' है। शीतकाल के प्रारम्भ होने के कारण, भवनों में सफेदी कराई जाती है। टूटे-फूटे भवनों की मरम्मत होती है। इस प्रकार के काम सारे भारत के कोने-कोने में किए जाते हैं, जिससे मलिनता दूर हो जाये, शुद्धता आ जाये।

ग) महाराज रामचन्द्र जी आज के दिन लंका में राक्षसी सभ्यता पर आर्य संस्कृति की विजय पाकर अयोध्या में लौटे थे। अयोध्यावासियों ने उनके स्वागत के लिए दिवाली की थी। इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी के उपकारों का स्मरण करने के लिए यह त्यौहार समस्त आर्य जाति द्वारा मनाया जाता है।

इस दिन नगरों में बड़ी धूम-धाम होती है। मित्रों तथा सम्बन्धियों में मिठाई बांटी जाती है।

4. रामनवमी

यह त्यौहार चैत्र मास में आता है। इस दिन महाराज श्रीरामजी 'दशरथ' के घर में उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम कौशल्या था। श्रीरामजी पिता की आज्ञा से 14 वर्ष तक

व्रत में रहे। पापी रावण को मारा और आर्य जाति की सम्म्यता को फैलाया। जो विदेशी लोग हमारे भारत में घुसपैठ कर रहे थे महाराज ने उन घुस पंठियों के अत्याचारों को रोका। ऋषि-मुनियों की रक्षा की। इस प्रकार राक्षसी सम्म्यता का नाश कर आर्य जाति की रक्षा की।

इस दिन कई लोग व्रत रखते हैं और सारा दिन श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हैं। श्रीराम की कथाओं को सुनने से लोगों के हृदय में श्रीराम के गुणों से प्रेम तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है।

5. जन्म अष्टमी

जन्म अष्टमी का त्यौहार सारे भारत में मनाया जाता है। इस दिन महाराज श्रीकृष्णजी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम वसुदेव और इनकी माता का नाम देवकी था। इनका पालन-पोषण बाबा नन्द के यहाँ हुआ। महाराज श्री कृष्ण जी उस युग के नेता थे। वे धर्म राज्य की स्थापना चाहते थे। इन्होंने भरी सभा में कंस का वध कर उसके अत्याचारों से लोगों की रक्षा की। इन्होंने अत्याचारी शिशुगाल को युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में मार डाला। इसी प्रकार चुन-चुन कर जरासन्ध, चाणूर, मुष्टिक आदि पापियों को मार दिया। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो

पांडवों के वीर योद्धा अर्जुन ने कुछ कायरता दिखाई। महाराज ने उसे गीता का उपदेश दिया। इस प्रकार महाराज श्रीकृष्ण की स्मृति में यह त्यौहार मनाया जाता है।

6. ऋषिबोध उत्सव

यह उत्सव शिवरात्रि के दिन मनाया जाता है। इसी रात को वैदिक धर्म का उद्धार करने वाले बालक पुलशंकर के हृदय में ज्ञान की ज्योति जली थी। उस बालक ने निडरता से कह दिया था—यह सच्चा महादेव नहीं। यह जड़-मूर्ति है। परम शिव और है, जिसकी शक्ति से संसार में सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल तथा अनेक प्रकार के ग्रह-उपग्रह गति करते हैं।

विद्यार्थियों ! तुम जानते हो यह बालक कौन था ? यही बालक कुछ वर्षों के पश्चात् युग प्रवर्तक स्वामी दयानन्द कहलाया। इसी ने अपना समस्त जीवन गुरु विरजानन्द की आज्ञा से वैदिक धर्म की रक्षा तथा प्रचार के लिए भेंट कर दिया था। इसी ने संसार के ढोंगों से दूर कर लोगों के हृदय में वेद की सत्य विद्याओं का ज्ञान दिया।

इसी दिन संसार के समस्त आर्य समाजों में ऋषि-बोधोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। प्रातःकाल हवन यज्ञादि के पश्चात् ऋषि-जीवन तथा उनके उपकारों पर भाषण होते हैं।

दिल्ली में केन्द्रीय सभा के तत्वावधान में दिल्ली गेट के बाहर कोटला मैदान में बड़ा भारी समारोह होता है। दिल्ली के लगभग 100 आर्यसमाजों के सदस्य श्रद्धा-भक्ति से इस उत्सव में सम्मिलित होते हैं। मध्याह्न के समय सभी नर-नारी भोजन करके विश्राम करते हैं। तीन बजे से व्याख्यानो का कार्यक्रम होता है। इसे 'ऋषिबोध मेला' कहा जाता है।

7. रक्षा बन्धन का त्यौहार

श्रावण मास की पूर्णमासी के दिन यह त्यौहार मनाया जाता है। समय-समय पर इसका रूप बदलता रहा है। प्राचीन काल में वेदों के विद्वान पुरोहित यजमानों से स्वाध्याय तथा शुभ कर्मों की प्रतिज्ञा कराते थे और उनकी दाईं कलाई पर रक्षाबन्धन का धागा बांधते थे। कालान्तर में बहिनें भाईयों को रक्षाबन्धन का धागा बांधने लगीं। भाई प्रतिज्ञा करते थे कि हम अपने बाहुबल से देश की रक्षा, तथा बहिनों की रक्षा करेंगे।

इतिहास बतलाता है कि चितौड़ की महारानी कर्मवती ने अपने देश की रक्षा के लिए मुगल सम्राट हुमायूँ को राखी भेजी थी। आजकल भी देश की रक्षा के लिए युद्ध भूमि की ओर प्रस्थान करने वाले जवानों को देश की पुत्रियाँ राखी बांधती हैं।

पाठ 11

वीर पूजा पर्व

कुछ एक ऐसे पर्व भी होते हैं, जिन्हें आर्य जाति धर्मवीर, कर्मवीर, दानवीर महापुरुषों की स्मृति से मनाती हैं।

(क) महात्मा हंसराज जयन्ती

19 अप्रैल, 1867 को जिला होशियारपुर, पंजाब के विजयबाड़ा नाम के ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। बहुत परिश्रम से इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस समय बी० ए० उत्तीर्ण करने वाले युवक बहुत ऊँचे सरकारी पदों पर लगाए जाते थे, परन्तु उन्होंने सुख भोग की ओर ध्यान न दिया और अपना जीवन डी० ए० बी० कालेज को भेंट कर दिया। कालेज से बिना कुछ लिए उन्होंने प्रिन्सिपल पद को सम्भाला। इनके बड़े भाई अपने वेतन से 40 रु० प्रतिमास इनको घर के खर्च के लिए दिया करते थे।

इनकी कृपा तथा अनथक परिश्रम से सारे देश में डी० ए० बी० कालेजों तथा स्कूलों का जाल सा बिछ गया। इन्होंने

Digitized by Arva Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक धर्म के प्रचार के लिए महान् कार्य किया, भूकम्प तथा अकाल में लोगों की सेवा की। मालवार जब मोपला जाति के मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किए तब आपने उन लोगों की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। पंजाब और यू० पी० में शिक्षा का जो प्रचार तथा प्रसार हुआ, उसका श्रेय महात्मा हंसराज जी को ही है।

उनका जन्म दिन 19 अप्रैल को डी० ए० वी० स्कूलों, कालिजों तथा आर्यसमाज की अन्य संस्थाओं में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ होती हैं। मैच खेले जाते हैं। सहभोज होते हैं और विशाल सभाओं में इन्हें श्रद्धांजलियां दी जाती हैं।

(ख) स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस

जालन्धर नगर में मुंशीराम जी एक बड़ भारी वकील हुए हैं। स्वामी दयानन्द से प्रभावित होकर वे वकालत छोड़कर सर्वजनहितकारी कार्य करने लगे। तभी उनको लोग 'महात्मा मुंशी राम' के नाम से पुकारने लगे। धीरे-धीरे इनका कार्य-क्षेत्र बढ़ने लगा। इन्होंने स्वामी जी द्वारा बतलाई शिक्षा नीति को साथ में लिया और कांगड़ी (हरिद्वार) में एक विशाल गुरुकुल खोल दिया। वहां से सैकड़ों धुरन्धर विद्वान् निकले। उन्होंने घर-बार छोड़कर संन्यास ले लिया, तभी से स्वामी श्रद्धानन्द कहलाने लगे। पुनः आपने मुंशी के काम को करना आरम्भ कर दिया। राजपूत मल्कानों को बलपूर्वक

मुसलमान बनाया जाने लगा। आने एक 'शुद्धि सभा' बनाई और हजारों की संख्या में बलपूर्वक मुसलमान बनाए गए राजपूत मलकानों को शुद्ध किया।

उन दिनों उन्होंने राष्ट्र के आंदोलन में भाग लिया। वे बड़े निर्भीक संन्यासी थे। उनकी 'शुद्धि सभा' के कार्यों से मुसलमान लोग चौखला गए। वे किसी न किसी प्रकार उनकी हत्या करने पर तुले हुए थे। स्वामी जी कई दिनों से रुग्ण थे। 23 दिसम्बर को एक पापी मुसलमान ने बीमार पड़े हुए स्वामी श्रद्धानन्द को शहीद कर दिया।

जहां वे शहीद हुए वह स्थान 'श्रद्धानन्द बलिदान स्थान' कहा जाता है। यह नया बाजार दिल्ली में है इसलिए 23 दिसम्बर को यहां से एक विशाल जलूस निकलता है। पंजाब, हरियाणा, यू० पी०, मध्यप्रदेश में अनेकों स्कूलों, कालिजों तथा दिल्ली के प्रायः सब समाजों की भजन मण्डलियां दिल्ली के बाजारों में घूमती हुई वैदिक धर्म का सन्देश सुनाती हैं। सांयकाल गांधी मैदान में विशाल सभा का आयोजन किया जाता है और शहीद की आत्मा को श्रद्धांजलियां भेंट की जाती हैं। इसी दिन अन्य नगरों में आर्य लोग प्रभात फेरियां भी निकालते हैं।



पाठ 12

नीति के दोहे

तन मन धन से कीजिए, निश दिन पर उपकार ।

यही सार नर देह का, वाद विवाद विसार ॥1॥

प्रिय भाषण अरु नम्रता, आदर प्रीति विचार ।

लज्जा क्षमा अरु याचना, ये भूषण उर धार ॥2॥

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल ।

हृदय तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल ॥3॥

करत करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान ।

रसरी आवत जात ते, शिल पर होत निशान ॥4॥

मधुर वचन सुन, मधुर वचन जो कभी न बोला ।

विधि ने किया अनर्थ दिया उनको नर चोला ॥5॥

मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर ।

कणं द्वार ह्वै संचरे, साले सकल शरीर ॥6॥

नौका में पानी बढ़े, घर में बढ़े दाम ।

दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन का काम ॥7॥

पाठ 13

सदाचार

भाग (क)

सदाचार का अर्थ अच्छा चाल-चलन है। सदाचार का जीवन में बहुत ऊंचा स्थान है। जैसे रात्रि की शोभा चाँद से होती है, जैसे सरोवर की जल से, जैसे फूलों की शोभा सुगन्ध से होती है इसी प्रकार मनुष्य के जीवन की शोभा आचार—अच्छे चाल-चलन से होती है। जिस मनुष्य का जीवन आचार के उत्तम गुणों से रहित है वह मनुष्य प्राणों से रहित शरीर के समान है। वह जीता होने पर भी मृतक के समान है।

मनु महाराज ने आचार का वर्णन करते हुए कहा है—

आचार से ही मनुष्य लम्बी आयु को पाता है, आचार से बहुत बड़ा धन पाता है, आचार से ही संसार में यश पाता है। मनुष्य कितना भी बड़ा विद्वान क्यों न बन जाए, यदि वह आचारहीन है, तो वह पापी और मलीन है। इस प्रकार ऋषि ने आचार-चरित्र के निर्माण की बड़ी प्रशंसा की है।

बालको ! चरित्र किसी वस्तु विशेष का नाम नहीं बल्कि अनेक गुणों के समूह को 'चरित्र' कहा जाता है ।

1. सहनशीलता

संसार में रहते हुए हमें कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना होता है । जहां संसार में यदि आनन्द है, तो कभी-कभी दुःख भी हैं । जहां फूल है, वहाँ कांटे भी हैं, दिन का आनन्दमय प्रकाश है, तो रात्रि का घना अन्धकार भी है । इसलिए हमें सुखों और दुखों में सदा सहनशील रहना चाहिए जिन महापुरुषों ने संसार को बदला है, सदा एक रस रहे हैं । देखिए सूर्य उदय होते अथवा अस्त होते समय लाल होता है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—श्री रामचन्द्रजी राज्यतिलक की सूचना पाकर न प्रसन्न हुए और वनवास प्राप्त होने पर वे व्याकुल भी न हुए ।

गुरु अर्जुनदेव जी को मुसलमान बादशाह ने बहुत कष्ट दिये । वे उनकी कैद में पड़े हुए भी गा रहे थे—

'तेरा भाना मिठा लागे' अर्थात् मुझे दुःख भी मीठा लगता है । सुख के समान मैं दुःख को आपका 'प्रसाद' मान कर आनन्द से ग्रहण करता हूँ ।

स्वामी दयानन्द सदा सुखों और दुखों को आनन्द से सहन करते थे । राम-लक्ष्मण राजकुमार थे, परन्तु वनों में उन्होंने

अनेकों कष्ट सहे। चरित्रवान्—सदाचारी का सबसे बड़ा गुण 'सहिष्णुता' है। बालको ! कठिनाई पड़ने पर कभी मत घबराओ। सुख और दुःख का चक्र सदा घूमता रहता है। रात के पीछे प्रातःकाल अवश्य होता है।

2. स्वार्थ त्याग

राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है :—

यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप-आप ही चरे ।

वही मनुष्य है, कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि मनुष्य में परोपकार की भावनाएं होती हैं, परन्तु पशु स्वार्थी होता है। कुत्ता दूसरे कुत्ते का शत्रु है। एक बेल दूसरे बेल को अपना चारा नहीं खाने देता। एक बन्दर फल या गुड़ के टुकड़े के लिए दूसरे का सिर फोड़ देता है, क्योंकि उसको अपना पेट भरना आता है। इसी प्रकार कई मनुष्य भी पशुओं के समान स्वार्थी होते हैं। वे अपना स्वार्थ पूर्ण करने के लिए दूसरों को हानि पहुंचाना पाप नहीं समझते। वे भी मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।

मनुष्य वास्तव में वही है, जो अपने स्वार्थ की चिन्ता न करके भी दूसरों का भला करता है यद्यपि स्वार्थ स्वाभाविक है, तथापि दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना उल्लू सीधा करना महापाप है। भले मनुष्य स्वयं कष्ट उठा कर लोगों की सेवा करते हैं। अपने धन से प्यार न करके जनता के लिए सराय,

प्याऊ, चिकित्सालय, अनाथालय, विद्यालय तथा अपंग-आश्रम खोलते हैं। वे किसी को धोखा देकर उसके धन तथा सम्पत्ति पर अधिकार नहीं करते। महात्मा हंसराज जी यदि चाहते तो राज्य में उच्च पद पाकर सारा जीवन आनन्द से बिताते, परन्तु उन्होंने स्वार्थ की ओर ध्यान न दिया और अपना सारा जीवन शिक्षा के प्रचार में और देश के दीन-दुखियों की सेवा में लगा दिया। महाराज श्री रामचन्द्र जी ने पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए बड़े भारी राज्य को ठुकरा दिया। सीता महारानी महलों के सुख को छोड़कर अपने पतिदेव की सेवा के लिए वन में गईं जहाँ उन्होंने अनेक कष्ट उठाये।

बालकों ! आप भी स्वार्थी न बनो। अपने देश, जाति के लिए अपने स्वार्थ का बलिदान कर दो, तभी तुम सच्चे मनुष्य बनोगे। माता-पिता, गुरु और आचार्य तथा देश जाति के लिए अपने स्वार्थों का त्याग करने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

3. क्षमा

हम से कई बार भूलें हो जाती हैं। हमारे माता-पिता तथा गुरु हमारी भूलों को क्षमा कर देते हैं। यदि कोई पुरुष दीन-दुखिया, रोगी अथवा अपाहिज कोई भूल कर बैठे तो आप उसे क्षमा कर दें। यदि कोई भूल करने पर आप से क्षमा मांगे तो भी आप क्षमा कर दें, परन्तु बार-बार क्षमा मांगने पर उसे क्षमा न करें।

यदि कोई आपसे अधिक बलशाली आपका जान-बूझ कर अपमान करे तो आप उसे कदापि क्षमा न करें। यह क्षमा नहीं, कायरता का चिन्ह है। एक विद्वान ने कहा है—“शत्रु और मित्रों के अपराधों को क्षमा कर देना केवल साधु-संन्यासियों के लिए शोभाशाली है, परन्तु हेकड़ी दिखाने वाले अपराधियों को क्षमा करना महापाप है।”

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने दो गुण्डे पहलवानों को एक बार तो उनकी भूल का मजा चखा ही दिया था। यदि कोई चोर पकड़ा जाए तो आप उसके अपराध को क्षमा न करें। यदि कोई विदेशी तुम्हारे देश का अपमान करे तो उसे भी क्षमा करना कायरता है।



पाठ 14

सदाचार

भाग (ख)

4. विनय

जिस प्रकार सुन्दर वस्त्र मनुष्य की शोभा बढ़ा देते हैं, उसी प्रकार (नम्रता) मनुष्य को विद्या और धन को चार-चाँद लगा देती हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धन, रूप, बल तथा अपने कुल का अभिमान कदापि न करे, सदा मीठा बोले, सभी से प्रेम का व्यवहार करे, अपने अध्यापकों तथा अन्य बड़े लोगों से नम्रता दिखाए।

विनय सब गुणों की जड़ है। विद्वान् मनुष्यों का कहना है :—

विद्या से मनुष्य में विनय (नम्रता) आती है। विनय से वह सभी गुणों का पात्र बनता है। अच्छे गुणों से वह धनी बन जाता है और धन से सभी प्रकार के सुख पाता है।

जो बालक विनयशील होते हैं, संसार में उनकी बड़ाई होती है। उद्दण्ड बालक सब जगह निरादर पाते हैं।

असहाय, निर्धन, रोगी, बूढ़े, लूले, लंगड़े ये सभी हमसे दया चाहते हैं। छोटे-छोटे प्राणी भी दया के पात्र हैं। बालक खेल रहे थे और मेंढकों को व्यर्थ पत्थरों से मार रहे थे। यह देखकर एक मनुष्य ने कहा “बच्चों आपका तो खेल हुआ परन्तु इनकी जान जा रही है ये प्राणी दया के पात्र हैं।” घोड़ा लंगड़ाता है छाती पर घाव है, परन्तु हम उसे तांगे में लगाकर सवारी करते हैं, यह क्रूरता है। बैल बीमार है, उसे गाड़ी में जोड़कर चलने के लिए बाध्य किया जाए तो यह निर्दयता है। किसी छोटे से बच्चे ने आपका जरा-सा अपमान कर दिया और आपने उसे मार-मार कर अधमुआ कर दिया। ये सभी काम निर्दयता से भरे हुए हैं। सरकार ने “पशु-दया विभाग” खोल रखा है कि पशुओं पर क्रूरता दिखाने वाले को कठोर दण्ड दिया जाए।

स्मरण रहे कि हिंस्र प्राणियों तथा पापी, अपराधी तथा अत्याचारी मनुष्यों पर कदापि दया नहीं करनी चाहिए। वे दया के पात्र नहीं।

6. परिश्रम

सदाचारी पुरुष अपने एक-एक क्षण का सदुपयोग करता है, वह भाग्य पर भरोसा न करके अपने उद्योग तथा परिश्रम

पर भरोसा रखता है। वह अपने जीवन की एक-एक घड़ी को सफल बनाता है। यह उसका सिद्धान्त है—

उद्यम ही इस दुनियां में, सब कामना पूरी करता है।
मन चाहा फल उसने पाया, जो आलसी बनकर पड़ा-न रहा ॥

वह आज का काम आज ही करता है आलसी नहीं बनता
उसके अंग में फड़कन होती है। आलसी तो सदा आज का
काम कल पर टालता है उसका कल आता ही नहीं।

आज कहे मैं काल करूँ, काल कहें फिर काल।
आज काल के करत ही, औसर जोसी चाल।

बच्चो ! सदा परिश्रमी बनो। ऐसा कौन सा काम है,
जिसे परिश्रमी नहीं कर सकता।

7. कृतघ्नता

मनुष्य समाज का एक अंग है। उसे समय-समय पर दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। विद्या पाने के लिए गुरु की, पालन-पोषण के लिए माता-पिता की, रोग में वैद्य की। संसार में अन्य कामों के लिए अनेक मित्रों की सहायता प्राप्त करनी आवश्यक है इसलिए भलाई करने वाले तथा रक्षा करने वालों की भलाईयों को कदापि नहीं भूलना चाहिए। जो लोग उनकी भलाईयों को भूल जाते हैं, वे कृतघ्न कहलाते हैं। कृतघ्न होना

महापाप है। एक ऋषि ने लिखा है—संसार के सभी प्रकार के पापी कभी न कभी परमात्मा की कृपा से संसार रूपी समुद्र से तर सकते हैं परन्तु कृतघ्न मनुष्य का पार उतरना कठिन है। पशुओं में भी कृतज्ञता के भाव पाये जाते हैं। इसके लिए एक सच्चा दृष्टान्त है—

एक समय एक मनुष्य वन में जा रहा था। उसने एक सिंह को देखा। वह डर गया, परन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह सिंह अपना पंजा आगे बढ़ा-बढ़ा कर उसे पास बुला-सा रहा था। उसने समझा—मृत्यु तो आ गई है, क्यों न इसके समीप जाऊँ। यह सोचकर वह सिंह के पास चला गया। देखा तो उसके पाँव पर सूजन थी, क्योंकि उसमें एक बड़ा कांटा चुभा हुआ था। उस मनुष्य ने वह कांटा निकाल दिया। सिंह उसके हाथ को चाटने लगा, मानो अपनी कृतज्ञता दिखा रहा हो। समय बीता, वह मनुष्य किसी अपराध में पकड़ा गया। और उसे मृत्यु दण्ड देने के लिए एक सिंह के पिंजरे में छोड़ दिया गया। देश का महाराजा अपनी पत्नी के साथ इस क्रूर दृश्य को देखने के लिए अनेक राज्य कर्मचारियों के साथ वहाँ उपस्थित था।

सिंह उस मनुष्य पर झपटा नहीं, बल्कि उसके पाँव सूंघने लगा। यह वही सिंह था, जिसके पाँव का कांटा उसी मनुष्य ने निकाला था। उस सिंह ने उसकी भलाई का बदला चुका दिया।

8. शरीर रक्षा

सदाचारी अपने स्वास्थ्य का भी पूरा-पूरा ध्यान रखता है। खाने-पीने तथा व्यवहार से वह अपने स्वास्थ्य को अच्छा बनाता है।

बच्चों ! श्रीराम, श्रीकृष्ण, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी, महात्मा हंसराज इन्हीं गुणों के कारण ही सर्वप्रिय बने और महापुरुष कहलाये।



पाठ 15

विनय

हे दया के धाम भगवान् विश्व का आधार है तू ।
सकल सृष्टि के पिता, सुख शान्ति का भण्डार है तू ॥1॥
चाँद, सूरज और तारे, मानते तेरे इशारे ।
सब चराचर मुदित रहते, एक तेरे ही सहारे ॥2॥
बहुत से उपकार तूने, बालकों पर भी किए हैं ।
तन, मन, माता-पिता, सखा दान तूने ही दिए हैं ॥3॥
जनक जननी के बहाने, तू हमें नित-पालता है ।
प्रेम से निज पुत्र सम तू हमको भी मानता है ॥4॥
बालगण हम हैं अनाड़ी, तू महा कल्याणकारी ।
ज्ञान दो, नव प्रेरणा दो, ज्योति दो है विघ्नकारी ॥5॥
हम सदा सन्मार्ग में जीवन बिता सुख-शांति पावें ।
लोक में परलोक में भी, तब प्रशंसा 'देव' गावें ॥6॥

पाठ 16

सद्व्यवहार

स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि सबके साथ यथा-योग्य व्यवहार करना चाहिए। ऐसा न करने से मनुष्य का आदर नहीं होता। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि आपका समाज में मान हो और लोग आपको जंगली, अशिष्ट और असभ्य न कहें तो इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखें कि लोगों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं।

बालकों के पथप्रदर्शन के लिए कुछ एक शिष्टाचार तथा सद्व्यवहार की बातें यहाँ दी जाती हैं। आशा है कि बच्चे उन पर ध्यान देंगे।

(क) नैतिक व्यवहार

1. ऐसा कोई काम मत करो, जिससे देश को हानि पहुँचे और उसका अन्य देशों की दृष्टि में आदर घटे।
2. चाहे हमारे विचार भिन्न हों तो हमें अपने माता-पिता, गुरु तथा अन्य नेताओं का आदर करना चाहिए।

3. 'राष्ट्र-गीत' के समय चुपचाप सीधे खड़े हो जाओ और 'राष्ट्र-ध्वज' का आदर करो। इसी प्रकार 'ओ३म्' के ध्वज का आदर करना चाहिए।
4. वेद में लिखा है—हे मनुष्य ! तू दूसरे की वस्तु का लालच न कर। इसलिए यदि किसी को कोई भी वस्तु मार्ग पर, विद्यालय में अन्य किसी स्थान पर मिल जाए, तो उसे अपना मत समझो।
5. चलते हुए रास्ते पर अथवा स्कूल में, स्टेशन के प्लेटफार्म पर केले के छिलके अथवा अन्य छिलके मत फेंको। इन पर से कोई फिसल पड़ेगा।
6. यदि दो मनुष्य बातें कर रहे हों तो उनकी बातों के समय उनसे दूर रहो।
7. श्रेणी में कोई वस्तु मत खाओ। यह असभ्यता है।
8. किसी से चिल्लाकर बात मत करो।
9. झूठ बोलकर अपने दोषों को मत छिपाओ।
10. घर के काम में माता की सहायता करो।

(ख) बड़ों के साथ

1. बड़े आदमी जब मिलकर या अलग खड़े हों तो उन्हें नमस्ते करो।
2. यदि तुम साईकिल पर सवार होकर जा रहे हो और सामने उच्च कर्मचारी, नेता, साधु, महात्मा तथा अर्थी आवे तो साईकिल से उतर जाओ।

3. किसी के साथ परिचय होने पर अथवा तिलक लगाये जाने पर हाथ जोड़कर नम्रता दिखाओ ।
4. जब कोई बड़ा व्यक्ति तुम्हारे घर आए, जब तुम विदेश से लौटो अथवा जाओ तब माता-पिता के तथा अन्य बड़ों के पाँवों पर हाथ लगाओ ।
5. यदि कोई शिक्षा दे रहा हो तो उसकी शिक्षाओं को ध्यान से सुनो ।
6. यदि कोई अतिथि तुम्हारे कमरे में आये तो उठकर उसका आदर करो । जब तक वह न बैठ जाए, तुम न बैठो ।
7. यदि कोई बड़ा आदमी बुलाये तो 'ए', 'हाँ' मत कहो ।
8. यदि बड़ों का नाम लेना पड़े तो उनके नाम से पहले 'श्री' लगाओ जैसे—श्री दरबारी लाल जी ।
9. बड़ों या अतिथि की ओर पाँव पसारकर मत बैठो ।
10. यदि किसी का नाम पूछना हो तो—'आपका शुभ नाम ?' कहकर पूछिए ।

(ग) घर में व्यवहार

1. यदि तुम्हें कोई वस्तु दी जाए तो झगड़ो नहीं ।
2. घर में जो बना है, उसे प्रसन्नता से खा लो ।
3. माता-पिता यदि कोई आज्ञा दें तो उसकी तुरन्त पालना करो ।

4. छोटे भाई-बहनों को कदापि तंग न करो ।
5. छोटों के आराम का ध्यान रखो ।

(घ) बच्चों से व्यवहार

1. छोटा बच्चा यदि कुछ चाहे तो उसकी बात को ध्यान से सुनो और प्रेम से जवाब दो । उसे झिड़को नहीं ।
2. कोई वस्तु बांटनी हो तो पहले बच्चों को बाँटो ।
3. छोटे बच्चे के नाम के पीछे जी लगाकर उन्हें बुलाओ ताकि उनमें आत्मसम्मान की भावना बढे ।
4. दबाव डालकर छोटे बच्चे से वस्तु छीनना, स्थान छीनना तथा उन्हें पीटना महान पाप है ।
5. यदि कोई बच्चा गिर जाए तो उसकी सहायता करो ।
6. छोटे-छोटे बच्चों से प्यार करना सीखो ।

(ङ) धार्मिक व्यवहार

1. अपनी बुराइयों को देखो और उन्हें दूर करने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करो ।
2. बुरी आदतों को हृदय से निकालकर दूर करो । यदि ये बुरी आदतें बल पकड़ जायेंगी, तो आपको बुरा बना देंगी ।
3. बात-बात में सौगन्ध खाना बहुत बुरा है ।

4. कोई न कोई धार्मिक पुस्तक प्रतिदिन पढ़ो। सत्संगों में भी जाया करो। इससे बड़ा लाभ है। तुम भले बालक बनोगे।
5. परमात्मा का स्मरण करने से जीवन में बल मिलता है। अतः 'गायत्री मंत्र' का अर्थ सहित पाठ करो और 'प्रार्थना मन्त्रों' का भी पाठ करो।
6. जहां शुभ कर्म यज्ञ, हवन, प्रार्थना, उपासना और उपदेश हो रहे हों, श्रद्धा से बैठकर उसमें भाग लो। इन शुभ कार्यों की हंसी उड़ाने वाला महान पापी होता है।
7. भगड़ालू मत बनो। व्यर्थ भगड़ा करने से स्वभाव बुरा होता है।
8. अपनी शक्तियों पर भरोसा करो। परिश्रम करो, इन दो साधनों से बड़े बन जाओगे।
9. भद्दी हंसी-मजाक मत करो। किसी की निन्दा मत करो। गन्दे गीत मत गाओ। सामने किसी की खुशामद और पीछे बुराई करना बहुत बुरा है।
10. भूल हो जाए तो क्षमा मांग लो। हठ न करो। यदि किसी से अनजाने में भूल हो जाए, तो उसे उदारता से क्षमा कर दो।
11. किसी से व्यर्थ शत्रुता मत करो। मित्रों से थोड़ी-सी बात पर मत खूँठो। किसी को गाली मत दो।

(च) सामान्य व्यवहार

1. यदि कोई दुष्ट मनुष्य किसी के विषय में बुरी बात कहे, तो उन गन्दी बातों को दूसरों के सामने मत दोहराओ ।
2. सदा मीठा बोलो, परन्तु वह सत्य हो ।
3. अपने नाम के साथ 'श्री' 'जी' मत लगाओ ।
4. किसी से शोक प्रकट करते समय हंसना या मुस्कराना नहीं चाहिए । आपका मुख गम्भीर होना चाहिए ।
5. बधाई अथवा पुरस्कार देते समय तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट हो ।
6. किसी की भलाई करो तो उसे मत जतलाओ, जतलाने वाला व्यक्ति नीच समझा जाता है ।
7. सवारी पर चढ़ते समय पंक्ति में चढ़ो । धक्का मत दो । उतरते समय धीरज से काम लो ।
8. कठिनाई पड़ने पर अथवा काम बिगड़ जाने पर धीरज मत छोड़ो । अपने को मत कोसो ।
9. यदि कोई तुम्हें चिढ़ाये तो क्रोध मत करो और न किसी को चिढ़ाओ ।

10. किसी अनपढ़ देहाती की भाषा और वेश को देख-कर उसका उपहास मत करो ।
11. यदि मार्ग में शीशे के टुकड़े, काँटे, कंकर, केले के छिलके पड़े हों तो उन्हें हटा दो ।
12. रास्ते पर ऐसा खेल मत करो, जिससे आने-जाने वाले लोगों को हानि पहुँचे ।
13. जम्माई लेते समय और छींकते समय मुँह को रुमाल से ढाँप लो ।



पाठ 17

बालकों के गीत

यह भारतवर्ष हमारा है,

सारे देशों से न्यारा है ।

झण्डा इसका तीन रंग का,

सबकी आंखों का तारा है ॥1॥

इसके अन्न वायु से पलकर,

हम इतने बड़े हुए हैं ।

कोटि-कोटि निज प्राण गंवाकर,

इसके ऋण से उऋण हुए हैं ॥2॥

हम देश-भक्त नर नाहर हों ।

हम गांधी, तिलक, जवाहर हों ।

यह देश बना सरताज रहे,

भारत माता की लाज रहे ॥3॥



पाठ 18

संस्कार

संस्कार शब्द का अर्थ है सुधारना । इस सुधारने के दो भाग हैं—(1) दोष दूर करना (2) गुण भरना ।

बच्चों ! आपने अपनी माता को रोटी पकाते देखा है । वह रोटी पका कर चूल्हे में सेंकती हैं तो उस रोटी पर भस्म लग जाती है । कहीं न कहीं जल भी जाती है । माता उस पकी हुई रोटी को कपड़े से साफ करती है जिससे कि वह भस्म दूर हो जाए और जलने की कालिख मिट जाए । यह है दोष दूर करना, पुनः उसे घी से चुपड़ती हैं । यह है 'गुण भरना' । ऐसे रोटी पौष्टिक तथा स्वादिष्ट बन जाती है ।

आपने मकान को बनते हुए भी देखा है । साधारण रूप से बना हुआ मकान, इतना दर्शनीय अथवा आनन्द से रहने योग्य नहीं होता जब तक कि उसका प्लास्टर न हो और दीवारों पर कलई न कराई जाए तथा चिप्स के फर्शों की रगड़ाई न कराई जाए । जब लकड़ी के दरवाजों की पालिश हो जाती है, तो भवन चमक उठता है । यह है भवन का संस्कार । इसी प्रकार पाँच-छः रु० में विक्रने वाली लकड़ी जब किसी कारीगर से सुधारी जाती है,

तब उसका मूल्य कई गुणा बढ़ जाता है। इसे लकड़ी का संस्कार कहते हैं।

जब बालक उत्पन्न होता है, तो उसमें भी कई दोष होते हैं। यदि उन दोषों को दूर कर उसमें गुण भर दिए जाएँ तो बालक का 'संस्कार' होता है। मनु महाराज ने लिखा— 'मनुष्य जब उत्पन्न होता है तो वह पशु के समान, उत्तम गुणों से रहित होता है। परन्तु संस्कारों से उसके दोष दूर किये जाते हैं और उसमें मनुष्यता के गुण भरे जाते हैं। हम देखते हैं कि हजारों मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं जो असभ्य तथा मूर्ख हैं। उनका समाज में कोई आदर नहीं होता। इसके विपरीत अनेकों ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनके आगे संसार का सिर झुकता है और वे आदर पाते हैं। पहले व्यक्ति के न तो दोषों को दूर किया गया और न ही उसमें गुण भरे गये हैं जैसे पिछड़े हुए देश पंचवर्षीय योजना बनाकर देश को उन्नत करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य को उन्नत करने के लिए उसके चरित्र को उत्तम बनाने के लिए ऋषियों ने १६ संस्कार बताए हैं, इन संस्कारों को हम दो भागों में बाँटते हैं—(1) माता-पिता के कर्त्तव्य (2) बालक के कर्त्तव्य। इन 16 संस्कारों में से केवल तीन संस्कारों का कुछ ब्यौरा इस प्रकार है।

1. नामकरण संस्कार

यह संस्कार जन्म से ग्यारहवें अथवा 101 वें दिन किया

जाता है। इस दिन बालक को नाम रखा जाता है। मनुष्यों के यदि अलग-अलग नाम न हों उन्हें कैसे पहचाना जाए और बुलाया जाए। स्वामी दयालन्द जी से पूर्व बालकों के नाम अच्छे नहीं रखे जाते थे। जैसे कालूराम, खोताराम, कूड़ामल। चैत में उत्पन्न हुए का नाम चैतराम, बैशाख में पैदा हुए का बिसाखी, इसी प्रकार जोदूराम, हाड़ीमल, सावनमल, फगूमल, ऐसे नाम रख दिये जाते थे। कई लोग अपने धर्म-ग्रन्थ के किसी पन्ने को उलटकर उसके पहले अक्षर पर नाम रख लेते हैं। स्वामी जी ने संस्कार-विधि में बताया है कि लड़के का जैसा नाम रखा जाए उसमें वैसे गुण भरे जायें।

माता-पिता ने यदि लड़के का नाम 'विद्यासागर' रखा तो माता-पिता का कर्तव्य होगा कि उसे वास्तव में विद्या का समुद्र बनायें। लड़की नाम 'सुधा' रखा तो उसमें सुधा—अमृत के गुण भरे जायें। जो भी नाम रखा जाए वह अर्थ वाला हो। नरोत्तम, अजय, अजीत इत्यादि।

संजय नाम का नवयुवक रणभूमि से पीठ फेरकर भागा, घर आया, तो माता ने उसे लज्जित कर कहा—बेटा ! मैंने तेरा नाम संजय—जीतने वाला रखा था, परन्तु तुमने आज अपने नाम को कलंक लगाया है अच्छा होता कि तुम्हारा नाम 'पराजय' रखती। यह सुन वह लज्जित हो गया और उल्टे पाँव युद्ध में गया और उसने विजय पाई।

गुरु गोविन्द सिंह जी के सुपुत्र के वचन थे—

“अजीत हूं मैं जीता न जाऊंगा,

यदि मैं जीता गया, तो जीता न आऊंगा।”

उस दिन अपने सम्बन्धियों को बुलाकर जहां बच्चे की जन्म तिथि तथा उसके नाम से परिचित कराया जाता है, वहां माता-पिता बच्चे के नाम के समान गुण वाला बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। संस्कार में आए हुए बन्धु इस प्रतिज्ञा में साक्षी होते हैं। उस बच्चे को आशीर्वाद देते हैं। उन्हें जल-पान कराया जाता है।

2. मुण्डन संस्कार

यह संस्कार बच्चे के पहले या तीसरे वर्ष में किया जाता है। इस दिन बालक के सिर के बालों को उस्तरे से काटा जाता है। इस मुण्डन संस्कार से बच्चे को लाभ होता है। पहले वर्ष में बच्चे के दाँत निकलते हैं। दाँत निकलने की अवस्था में बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। बालों को साफ कराने से और सिर पर मक्खन आदि को मसलने से दाँतों के निकलने में कष्ट नहीं होता है। इस प्रकार बच्चे की आँखें दुखनी ठीक हो जाती हैं।

शरीर में मस्तिष्क का बड़ा महत्व है। इसीलिए मनुष्य का सिर सदा ऊँचा रहता है। सोते समय भी इसे तकिये से ऊँचा रखा जाता है। यदि मस्तिष्क में कुछ विकार आ जाए,

तो मनुष्य दो कौड़ी का हो जाता है। इसलिए इसकी नस-नाड़ियों को पुष्ट तथा शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। जब मुंडन होता है, तो शुद्ध वायु लगती है। इसे साबुन अथवा दही आदि से प्रतिदिन स्वच्छ किया जाता है और घी अथवा मक्खन की मालिश की जाती है, तो मस्तिष्क को विकास करने में बड़ी सहायता मिलती है।

3. यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊ संस्कार

इस दिन गृहस्थ-लोग बड़ा उत्सव मनाते हैं। बच्चे का मुण्डन कराने के पश्चात् उसे स्नान कराया जाता है और नये नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। यज्ञ के स्थान पर लाकर बच्चे को आशीर्वाद देते हैं—‘हे बालक, तू उन्नति करता हुआ सौ वर्षों तक जी।’ अतिथियों का आदर करने से पूर्व शांति पाठ करके संस्कार को समाप्त किया जाता है।

यह संस्कार बालक के आठवें वर्ष से बारहवें वर्ष तक किया जाता है। सोलहवें वर्ष तक भी किया जा सकता है। बालक को एक दिन पूर्व दूध पीकर अथवा फल खाकर व्रत रखना चाहिए। जो दिन निश्चित किया जाए, उस दिन यज्ञ के लिए वेदी बनाई जाए। बालक का मुंडन करा कर पीली धोती पहन कर यज्ञ में आए और गुरु के चरणों को छू कर प्रणाम करें। ईश्वर स्तुति, प्रार्थना तथा स्वस्ति वचन के पश्चात्, गुरु बालक को तीन तार वाला ‘यज्ञोपवीत’ पहनाये। उसको गायत्री मन्त्र का उपदेश दे और उसका अर्थ

समभाये । यही गुरुमन्त्र है । गायत्री मन्त्र द्वारा परमात्मा से बुद्धि मांगी जाती है ।

यज्ञोपवीत की 'तीन तारों' का अर्थ है—देवऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण अर्थात्—[1] यज्ञादि द्वारा देव-शक्तियों को शुद्ध और पवित्र करना एवं ईश्वर की उपासना करना । [2] वेदादि सत्शास्त्रों तथा उत्तम-उत्तम विद्याओं को प्राप्त करना । [3] माता-पिता तथा गुरुजनों का आदर सम्मान करना । जीवन भर उनका कृतज्ञ रहना ।

इसके अगन्तर बालक तीन समिधाओं को घी में भिगो-कर अग्नि कुण्ड में डालता है । गुरु उसे उपदेश देता है, 'हे बालक ! तुझे भी अपने शरीर, हृदय और मस्तिष्क को प्रदीप्त करना होगा अर्थात् शरीर को बलवान, हृदय को प्रेम, ममता, सहानुभूति, श्रद्धा आदि से उन्नत करना और मस्तिष्क को अनेक प्रकार की विद्याओं से विकसित करना होगा ।'

इसके पश्चात् बालक को आचार्य शिक्षा देता है—हे बालक ! आलस्य को छोड़ दो । प्रातः उठकर यज्ञादि करके अपनी पढ़ाई में मन लगाओ । सादा जीवन बिताओ । शिक्षा के विरोधी कामों को छोड़ दो । गुरु का पिता के समान आदर करो । जिस जल की गहराई का पता नहीं हो, उसमें मत नहाओ । मन वचन और कर्मों को पवित्र बनाओ । वृक्ष पर मत चढ़ो ।

पाठ 19

वेदों की महिमा

मनुष्य को जीवन का सत्य मार्ग दिखाने के लिए परमात्मा ने सृष्टि की आदि में वेदों का ज्ञान दिया। पहले-पहल वेदों का ज्ञान ऋषियों को मिला। ऋषियों ने अपने शिष्यों को इस ज्ञान का उपदेश दिया।

वेदों की कुछ शिक्षायें

1. ईश्वर सर्वव्यापी

सारे संसार में परमात्मा का निवास है। तेरे लिए भगवान ने जो कुछ दिया है, उसको ही तू अपना समझ। किसी के धन का लालच मत कर।

2. परस्पर प्रेम

हे मनुष्यो ! तुम एक-दूसरे से प्रेम करो, जैसे कि गाय अपने बछड़े से प्रेम करती है।

3. संगठन

हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि भाई-भाई से बहिन-बहिन से शत्रुता न करे, सब मिलकर अच्छे कार्य करो और आपस में शुभ वाणी बोला करो।

4. गौ की महिमा

गौओं का दूध, घी, मक्खन आदि हमारे शरीर को पुष्ट करते हैं। इनकी बड़ी महिमा है; इसका पालन-पोषण करो।

‘पुत्र सदा पिता के अनुकूल चले।’ पुत्र तथा पुत्रियां सदा माता की आज्ञा का पालन करें। पत्नी सदा ही पति से मधुर वचन बोले।

5. गृहस्थ धर्म

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द तक सभी ऋषि-मुनियों ने वेदों को पढ़कर उसके महत्व को स्वयं समझा और समझाया।

वेद के मुख्य तीन विषय हैं—(1) ज्ञान और विज्ञान (परमात्मा का ज्ञान तथा सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान), (2) कर्म (भले और बुरे कर्मों का परिचय), (3) उपासना (परमात्मा को पाने के साधन)।

वेद चार हैं—1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद, 4. अथर्ववेद।

1. ऋग्वेद में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी और समुद्र आदि सृष्टि के सभी पदार्थों का ज्ञान तथा विज्ञान बतलाया गया है।

चरित्र सम्बन्धी अच्छे-अच्छे उपदेश हैं।

2. यजुर्वेद में अच्छे कामों की शिक्षाएं हैं—संसार भर

का उपकार करना, समाज में रहने का ढंग, सांसारिक उन्नति आदि कर्मों का उल्लेख किया गया है।

3. सामवेद में संगीत द्वारा परमात्मा की स्तुति तथा उपासना बतलाई गई है।

4. अथर्ववेद में राष्ट्र रक्षा, नाना प्रकार की औषधियाँ, शत्रु नाश, राजकार्य, घर बनाना इत्यादि कई विषयों का ज्ञान मिलता है।

इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है—वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

बालको ! तुम भी वेद मन्त्रों को कण्ठस्थ करके उनके अर्थ को जानो। यह परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान है।

—: 0 :—

पाठ 20

उत्तम शिक्षाएं

- सांच बराबर तप नहीं, भूठ बराबर पाप ।
जा के हृदय सांच है, ता के हृदय प्रभु आप ॥1॥
- बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय ।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय ॥2॥
- करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निशान ॥3॥
- ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय ॥4॥
- सब दोषण में आलसहं, अवगुण जान महान ।
नाश होहि यातें सदा, गुण अनेक अस जान ॥5॥
- दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करें, दुःख काहे को होय ॥6॥
- जो गरीब सों हित करे, ते 'रहीम' बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापरो, कृष्ण मिताई जोग ॥7॥
- कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन ।
जैसी संगति बैठिए, तैसी ही गुण दीन ॥8॥

पाठ 21

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

राम राज्य की महिमा

रामचन्द्र जी का राज्य बहुत ही सुखदाई था । अपनी योग्यता और त्याग से श्रीराम ने राज्य को सब लोगों के लिए हितकारी बना दिया था । वे प्रजा के लिए अपना सब कुछ त्यागने के लिए उद्यत थे । रामचन्द्र जी स्वयं सदाचारी, धर्मात्मा, वृद्धजनों के सेवक, अपने सुखों के मोह में न फँसने वाले, वीर तथा वेदों की आज्ञा पर चलने वाले थे ।

माता कौशल्या से उनका जन्म हुआ था; वह प्रतिदिन हवन यज्ञ किया करती थीं और परमात्मा की उपासना किया करती थीं । यह एक नियम है कि राजा सदाचारी हो तो प्रजा भी उत्तम होती है । यदि राजा दुराचारी, पापी और नीति तथा वेदों की आज्ञाओं को न जानने वाला हो तो उसकी प्रजा में भी वही अवगुण रहते हैं । वे समझते थे—

जाहि राज प्रिय प्रजा दुःखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।

अर्थात् जिस राजा की प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक में जाता है। इसलिए श्रीराम ने अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिए बहुत प्रयत्न किया। उनके राज्य की महत्ता के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

“श्रीराम के राज्य में कोई भी मनुष्य छोटी अवस्था में नहीं मरता था। कोई भी दुराचारी तथा शराबी और झूठ बोलने वाला नहीं था। अन्न की कोई कमी नहीं थी, क्योंकि समय पर ही वर्षा हुआ करती थी। कहीं भी कोई युद्ध नहीं होता था। प्रजा राजा के साथ सच्चा प्रेम करती थी। बालक माता-पिता तथा गुरुओं का हृदय से सम्मान करते थे। निर्धनता कभी किसी के पास फटकती तक नहीं थी। सभी लोग स्वस्थ तथा धर्मात्मा थे, बलवान निर्बल को नहीं सताता था। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र अपना-अपना काम करते थे। श्रीराम के भय से चोर-डाकू उपद्रव नहीं करते थे।” इसका कारण थे श्रीरामचन्द्र जी चरित्रवान तथा उच्च आदर्श वाले महापुरुष थे। उनके जीवन की कुछ एक घटनाएं इस प्रकार हैं—

वीर और साहसी

‘महापुरुष की यह सबसे बड़ी पहचान है कि बड़ी से बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी वह अपने साहस और धैर्य को नहीं छोड़ता। जिस प्रकार आग में पड़कर सोना चमक उठता है, उसी प्रकार विपत्ति की आग में पड़कर महापुरुष चमक उठते हैं।

महाराज रामचन्द्र जी में इस प्रकार के अनेकों गुण थे। तभी तो उनका जीवन एक आदर्श जीवन माना जाता है। महाराज रामचन्द्र जी को एक दिन पिता ने अपनी सभा में बुला भेजा और कहा—“राम ! मेरी सारी प्रजा आपको युवराज बनाना चाहती है, अतः कल आपको राज्य तिलक देना निश्चित हुआ है।” इस आज्ञा को सुनकर उन्हें कोई विशेष प्रसन्नता न हुई। परन्तु रात को ही कैकेयी को उसकी दासी मन्थरा ने बुरी पट्टी पढ़ाते हुए कहा—रानी तू नासमझ है। राजा दशरथ तुझे सदा के लिए राज्य शासन से अलग करने पर तुला हुआ है। कौशल्या राजमाता बनेगी। यह धोखे का चक्र चल रहा है, तभी तो भगड़े आदि की आशंका करते हुए भरत को ननिहाल भेज दिया गया है।’

‘भरत से सुत पर सन्देह, बुला गया उसे न गेह।’

कैकेयी उसकी बातों में आ गई और रात में ही उसने अपने दो मनोरथों को महाराज दशरथ से स्वीकृत करवा लिया।

पहला—राम 14 वर्ष के लिए मुनियों के वेश में वनों में रहें।

दूसरा—भरत अयोध्या पर राज्य करे।

प्रातःकाल होते ही पुनः रामचन्द्र जी को बुला कर कहा गया—“हे राम ! तुझे 14 वर्ष के लिए वन जाना है और युवराज पद भरत को मिलेगा।”

यद्यपि वह आज्ञा बड़ी भयंकर थी, परन्तु श्री रामचन्द्र जी तनिक भी नहीं घबराए और वनों में चले गए। यह कितना बड़ा धीरज था। उनके जीवन में अनेकों कठिनाइयाँ आईं परन्तु उन्होंने उनका मुकाबला डटकर किया।

सीता हरण

राक्षसी सम्यता में पली हुई शूर्पनखा श्री रामचन्द्र से प्यार करके उन्हें वश में करना चाहती थी परन्तु उसका मनोरथ पूरा न हुआ, बल्कि लक्ष्मण ने उसका अपमान भी किया। तब उसने राक्षसी कर्मों वाले अपने भाई रावण को सीता को अपनी बना लेने की प्रेरणा दी। वह घोखे से सीता को कुटिया से हर ले गया, क्योंकि वह श्रीराम की शक्ति को जानता था, अतः उसने घोखे से सीता को हर लिया। पत्नी का यह हरण एक बड़ी भारी विपत्ति थी। दूसरी ओर घना जंगल था। कोई भी साधन सीता जी की खोज के लिए नहीं था। चारों ओर विपत्तियों के बादल थे, परन्तु उन्होंने धीरज रखा और साहस न छोड़ा।

लक्ष्मण मूर्च्छा

लंका में रावण की सेना से घमासान युद्ध हो रहा था। लंका के वीर तथा रावण के पुत्र मेघनाथ की बर्छी से लक्ष्मण घायल हो गया। चारों ओर अन्धकार था, तो भी श्रीराम जी न घबराए। सुषेण वैद्य ने चिकित्सा की और भाई लक्ष्मण स्वस्थ हो गया।

सच्चा मित्र श्रीराम

शास्त्रों में लिखा है कि मित्र के सुख-दुःख में साथ देना महा-पुरुषों का गुण है। दुष्ट मनुष्य मित्र को विपत्ति आने पर छोड़ देते हैं। श्री रामचन्द्र जी सीता की खोज में वनों की घूल छानते-फिरते थे। वानर जाति के महान वीर तथा राजनीति के विद्वान श्री हनुमान जी से मेल हुआ। हनुमान जी ने इनकी योग्यता, वीरता और चरित्र को पहचान लिया। वह दोनों भाईयों को अपने राजा सुग्रीव के पास ले गया। उसने आयें रीति के अनुसार यज्ञ हवन के पश्चात् अग्नि-कुण्ड के सामने दोनों को खड़ा करके सुग्रीव और श्रीराम की मित्रता करा दी। श्रीराम को पता चला कि इसके बड़े भाई बाली ने इसका राज्य छीन लिया है।

‘सुन सुग्रीव मैं मरिऊँ, बालिहिं एकहि वान ।

ब्रह्मा रुद्र सरनहि गए, तऊ न उबरहिं प्राण ।

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी,

तिनहिं विलोकत पातक भारी ।

निज दुःख गिरि सम रजकर जाना,

मित्र के दुःख रज मेरु समाना ॥

अर्थात् हे सुग्रीव ! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बाली को मैं एक बाण में मार दूंगा। चाहे उसे ब्रह्मा और रुद्र जैसे

बलवान् भी बचायें वह न बच सकेगा। मैं समझता हूँ कि जो मित्र के दुःख को देखकर दुःखी नहीं होता, उसे देखने से भी पाप लगता है। “जो मनुष्य अपने पर्वत के समान दुःखों को घूलि के कण के समान तथा मित्र के छोटे से दुःख को मेरु पर्वत के समान जानता है, वही मित्र है।”

रामचन्द्र का चरित्र

लंका के युद्ध में रामचन्द्र जी की विजय का सबसे बड़ा कारण उनका चरित्र और न्याय था।

- (क) बाली को मारा, परन्तु उसके बेटे को युवराज बनाया। उसकी सन्तान से शत्रुता न दिखाई। इसी से सुग्रीव का राज्य भी दृढ़ हो गया।
- (ख) विभीषण उनके चरित्र से प्रभावित होकर उनका साथी बन गया।
- (ग) रावण के मर जाने पर विभीषण को उसके अन्तिम संस्कार करने की आज्ञा देते हुए कहा—भाई विभीषण ! मृत्यु के पश्चात् बैर समाप्त कर देना चाहिए। अब इसका संस्कार वैदिक विधि के अनुसार करो। यह आपका बन्धु है। वैसे ही मेरा भी बन्धु है। महाराज रामचन्द्र जी मातृ-पितृ भक्त, उत्साही, आयं संस्कृति के रक्षक, सत्यवादी, गुरुभक्त, सदाचारी के पति, उत्तम मित्र तथा महावीर योद्धा और वेद वेदांग के जानने वाले मानव थे।



पाठ 22

पतित उधारनहार

पिताजी ! तुम पतित उधारनहार ।

दीन शरण कंगाल के स्वामी,

दुःख के मोचन हार ॥1॥

इस जगमाया जाल भ्रम में,

सूझे न सार असार ॥2॥

सत्य ज्ञान बिन हम सब डोलें,

पात नहीं तब पार ॥3॥

पाप प्रवाह भयंकर जल में,

डूबते हैं मंझधार ॥4॥

तुमरी दया बिन को समरथ है,

करो दीनन से प्यार ॥5॥

—:०:—

पाठ 23

श्री कृष्ण महाराज

संसार में जन्म-मरण का चक्र चल रहा है जो जन्म पाता है, वह अवश्य ही एक न एक दिन मरता भी है। मरने के पश्चात् धीरे-धीरे उसके काम तथा उसकी बातें स्वप्न हो जाती हैं, परन्तु कुछ एक ऐसी प्रबल आत्माएं भी संसार में जन्म लेती हैं, जो कि अपने को सदा के लिए अमर बना देती हैं। जब तक सूर्य और चन्द्रमा से प्रकाशित होने वाली पृथ्वी रहती है तब तक उनका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

ऐसी पवित्र आत्माओं में श्रीकृष्ण का नाम प्रथम श्रेणी के मानवों में माना जाता है। उनका जन्म मथुरा में महाराज वसुदेव की पत्नी देवकी से हुआ, परन्तु इनका पालन-पोषण गोकुल के बाबा नन्द के घर में हुआ था। ये युग बदलने वाले महामानव थे। उनकी जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएं इस प्रकार हैं :—

(क) नेतापन

विद्वानों का कहना है कि 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' अर्थात् होनहार मनुष्य बचपन से ही पहचाने

जाते हैं। महाराज कृष्ण अभी छोटे ही थे कि उन्होंने बालकों की मण्डली बना ली। सबसे पहले उन्होंने अनुभव किया कि गोकुल का दूध, दही, मक्खन मथुरा में जाकर बिकता है। गोकुलवासी बालकों के हिस्से में कुछ भी नहीं आता है। ये बालक किस प्रकार बलवान बन सकेंगे। इसलिए यह मण्डली लोगों के घरों में घुस जाती और मक्खन तथा दही खा लेती, तथा दूध पी लेती। इसका प्रभाव यह हुआ कि गोकुल के गाँवों से गोरस का बाहर भेजना बन्द हो गया। दही-दूध को खा-पीकर बालक बलवान होने लगे।

(ख) गोपाल

महाराज श्रीकृष्ण वाल्यकाल से गो जाति से प्यार करते थे और वनों में घूम-घूमकर ग्वालों के साथ मिलकर इन्हें चराया करते थे। वहीं वनों में कुश्तियाँ करते और अपना बल बढ़ाते थे। निदान श्रीकृष्ण बलवान बन गए और चाणूर तथा केसी जैसे पहलवानों को हराकर कंस को भी मार दिया।

(ग) सच्चा मित्र

कृष्ण तथा सुदामा महान विद्वान सन्दीपन के पास आश्रम में पढ़ते थे। विद्या समाप्त कर श्रीकृष्ण द्वारिका के राजा बन गये, परन्तु सुदामा निर्धन ब्राह्मण ही रहा। वह त्यागी ब्राह्मण था। उसके विषय में कहा गया है :—

“सूखी, रोटी चणे की, लवण बिरहिता, प्रापिते वासरान्ते कटया पाती कछौंगा, न शिरिस न पगड़ी, खंड, खंड बिछौना ।”

अर्थात् सुदामा जी इतने निर्धन थे कि उन्हें कहीं सायंकाल को चनों की सूखी रोटी मिलती थी। कमर में फटी-पुरानी धोती थी और सिर पर पगड़ी भी नहीं थी। उसके सोने का विस्तर भी फटा-पुराना था।

एक दिन उसकी स्त्री ने कहा—आप कहते हैं कि कृष्ण मेरे मित्र हैं। वे तो आजकल द्वारिका के राजा हैं। तुम जाकर उनसे क्यों नहीं अपने लिए सहायता मांगते?” पहले तो उसने टाल-मटोल कर दी, परन्तु पत्नी के बार-बार आग्रह करने पर भेंट के लिए चावलों की पोटली लेकर श्रीकृष्ण के पास पहुंचे। सुदामा जी अपने फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। मन ही मन लजा गये। परन्तु पहरेदार ने उन पर दया करके महाराज कृष्ण जी के पास सूचना दे दी।

महाराज सुदामा का नाम सुनते ही तुरन्त वहां पहुंच गये। सुदामा को गले लगा लिया। मित्र सुदामा की दशा को देखकर उनका जी भर गया। नंगे पांव चलने के कारण सुदामा के पांव में कई काँटे चुभ गये थे, उन्हें अपने हाथों से निकाला। पूछा—“भाभी ने मेरे लिए क्या भेजा है?” सुदामा घटिया चावल को देने में लज्जा करने लगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने कोने में दबी हुई पोटली को छीन ही लिया और बैठे-बैठे चबाते हुए कहने लगे—“मित्रवर ये चावल बड़े स्वादु हैं।”

सुदामा कई दिनों तक श्री कृष्ण जी के पास रहे। उनका भोजन वस्त्रादि से खूब सत्कार होता रहा। घर आने लगे तो कुछ मांग न सके। श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम से तथा आदर-सत्कार से विदा किया। सुदामा मन ही मन में श्री-कृष्ण को कोसने लगा—“आखि ग्वाला ही निकला। राजा बना तो मुझे क्या लाभ ?” सुदामा जी जब गाँव में पहुँचे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वहाँ तो भोंपड़ी दिखाई ही न दी। बड़े-बड़े साफ-सुथरे भवन दिखाई दिये। पत्नी ने द्वार पर आकर स्वागत किया—भीतर जाकर देखा कि सभी सुख के सामान हैं धन्य हैं ऐसे मित्र ! जो मित्र के दुःखों को हर लें।

(घ) नीति के विद्वान

एक समय की घटना है कि पांडवों और कौरवों ने युद्ध की तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दीं। महाराज श्रीकृष्ण उस समय महान पण्डित तथा राजनीति के विद्वान् थे। दूत बनकर दुर्योधन को समझाने गये, परन्तु उसने कोरा जवाब दिया। श्रीकृष्ण दोनों के सम्बन्धी थे, इस लिए दोनों दलों ने आने वाले युद्ध के लिए सहायता लेनी चाही। पांडवों की ओर से अर्जुन और कौरवों की ओर से दुर्योधन श्रीकृष्ण के महल में आ पहुँचे। दुर्योधन पहुँचा तो महाराज विश्राम कर रहे थे। वह सिरहाने की ओर बैठ गया। उसके पश्चात् अर्जुन आया। वह उनके पाँव की ओर बैठकर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा।

श्रीकृष्ण महाराज

श्रीकृष्ण जागे तो पाँव की ओर बैठे हुए अर्जुन को देखा और पूछा—कहो क्या बात है? इतने में भट से दुर्योधन बोल उठा।

पहले मैं आया था। मैं युद्ध के लिए सहायता चाहता हूँ। श्रीकृष्ण जी ने कहा—“मैंने पहले अर्जुन को देखा है तथापि मैं दोनों की युद्ध में सहायता करूँगा। एक ओर अस्त्र-शस्त्र से सजी हुई मेरी विशाल सेना होगी और दूसरी ओर मैं अकेला ही जाऊँगा। मैं अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाऊँगा। कहो दुर्योधन! आप मुझे चाहते हो या मेरी सेना को।” उसने सोचा कि निहत्थे श्रीकृष्ण को चुन कर मुझे कोई लाभ नहीं होगा, अतः वह भट बोल उठा—“मुझे सेना चाहिए।”

अर्जुन की प्रसन्नता का पार न रहा। वह जानता था कि श्रीकृष्ण वेद-वेदांगों के महान् विद्वान् सदाचारी राजनीति के पण्डित हैं क्योंकि उसने वेद पढ़ा था। जहाँ क्षत्रिय शक्ति और ब्रह्म-शक्ति अर्थात् बल और बुद्धि मिल जाये, वहाँ अवश्य विजय होती है। उसने कहा—“महाराज! मेरी इच्छा पूर्ण हुई। मैं आपको अपना सहायक पाकर कृतार्थ हो गया हूँ। मुझे विश्वास है कि हमारी ही विजय होगी।” हुआ भी यही। नीति से पाँडवों की कठिनाइयाँ दूर हुई और उनकी विजय हुई।

(ड) गीता का उपदेश

युद्ध आरम्भ होने वाला था, दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र चलने वाले थे। ऐसे समय में अर्जुन ने कहा—मैं युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि जिनके लिए हम राज्यान्वेषण करते हैं, वे तो इस

युद्ध में मारे जायेंगे। स्त्रियां विधवा हो जायेंगी, बालक अनाथ हो जायेंगे। भारत भूमि नरक बन जायेगी।

“मैं किस पर बाण चलाऊं। द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं, भीष्म पितामह है, मैं भीख मांगकर जीवन बिताना इस युद्ध से अच्छा समझता हूं।”

उस समय श्रीकृष्ण जी ने गीता का अमर उपदेश दिया जो कि संसार भर में आज भी बड़े सम्मान की दृष्टि से पढ़ा सुना जाता है। उसमें कई विषयों पर प्रकाश डाला गया है :

(क) क्षत्रियों का धर्म

क्षत्रियों का यह सबसे बड़ा धर्म है कि वह देश और धर्म के लिए युद्ध करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो पापी हैं।

(ख) आत्मा की अमरता

यह आत्मा अमर है। इसे कोई भी मार नहीं सकता। यह न उत्पन्न होती है, न मरती है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नए वस्त्र धारण कर लेता है, इसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करती है।

(ग) कर्म योग

कोई भी मनुष्य बिना कर्म के नहीं रह सकता। अतः फल की इच्छा को छोड़कर सभी कर्म करने चाहिए।

(घ) सुख-दुःख समान

हे अर्जुन ! संसार में सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी, लाभ-हानि, आते-जाते होते हैं, इसलिए इन्हें मत चलाओ।

पाठ 24

भीष्म पितामह

भीष्म पितामह अपने समय के महान् योद्धा तथा महात्मा थे। इस प्रकार का महामानव संसार के इतिहास में अभी तक दिखाई नहीं देता।

इनके वचन का नाम देवव्रत था। इनके पिता महाराज शान्तनु थे। एक बार महाराज शान्तनु नदी तट पर घूम रहे थे। उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा। वह धीवर राज की कन्या थी। राजा ने उसे बुलाकर कहा—‘हे कैवर्त्त ! मैं आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूँ।’ उसने विनयपूर्वक कहा—“महाराज ! मैं आपकी आज्ञा मानने के लिए तैयार हूँ परन्तु मेरी प्रार्थना है कि इस कन्या से जो सन्तान होगी, वही राज्य की उत्तराधिकारी होगी।”

यह सुनकर राजा ने कहा—“मेरा पुत्र देवव्रत है। उसका ही अधिकार राज्य लेने का है। मैं उससे अन्याय नहीं करना चाहता।” यह कहकर महाराज अपने घर लौट

आये, परन्तु मन ही मन दुःखी रहने लगे । इस घटना को देवव्रत ने भी सुना । वह सच्चा पितृ-भक्त था । वह अपने लिए पिता को दुःखित अवस्था में नहीं देख सकता था । उसने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया और धीवरराज के पास गया । धीवर ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई । देवव्रत ने कहा—“तुम्हारा दोहता ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा । मैं इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ ।” धीवरराज ने कहा—“माना कि आप राज्य को स्वीकार नहीं करेंगे, परन्तु आपकी सन्तान तो बलात् मेरे दोहते से राज्य छीन लेगी । अतः मुझे क्षमा करें ।”

भीष्म प्रतिज्ञा

यह सुन देवव्रत जरा गम्भीर होकर बोला—मैं दोनों भुजाएं उठाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक जीऊंगा, तब तक विवाह नहीं करूंगा ।” राजकुमार के लिए यह एक भीष्म प्रतिज्ञा थी । इस प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया । धीवरराज ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह राजा से कर दिया । इसे वचपन में ‘मत्स्य गंधा’ कहा जाता था ।

चिरंजीवी

बाल ब्रह्मचारी भीष्म ने अपना जीवन बहुत सादा व्यतीत किया । वेदादि शास्त्रों को पढ़ा । युद्ध विद्या में उनके समान भूमि पर कोई वीर न था । इन्होंने अपनी सौतेली

माता के पुत्रों का पालन-पोषण किया। उनका विवाह काशीराज की कन्याओं से कराया। ये इच्छामृत्यु से अर्थात् इनका स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि मृत्यु इनके समीप नहीं फटक सकती थी। ये पराक्रम के भण्डार थे।

अजेय योद्धा

कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में उन्हें सेनापति बनाया गया। वे कौरवों के पक्ष में लड़ रहे थे। एक दिन उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं दस हजार सैनिकों को मारकर ही अन्न-जल ग्रहण करूंगा। दुसरी और अर्जुन था। उसने कह दिया कि दादाजी को आज अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करने दूंगा। उसने कौरव सेना के बड़े-बड़े वीरों को सदा की नींद सुला दिया तो दूसरी ओर भीष्म पितामह अदभुत वीरता दिखा रहे थे।

निदान भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली। अर्जुन अपने दादा की वीरता को देखकर चकित रह गया। कहां अर्जुन जैसा महावीर नौजवान और कहां डेढ़ सौ वर्ष का पितामह। इस घटना ने पाण्डवों का उत्साह क्षीण कर दिया।

सत्य के लिए जीवन दान

सायंकाल हो गया था, इसलिए युद्ध समाप्त हो चुका था। महाराज श्रीकृष्ण ने रात को पाण्डवों की सभा बुलाई और कहा—“महाराज युधिष्ठिर, मैं समझ

रहा हूँ कि आज के युद्ध ने आपको निर्बल बना दिया है क्योंकि पितामह में जहाँ वीरता है वहाँ तपस्या का भी बल है। उन्हें जीतना सरल नहीं। यह भी मेरा विश्वास है कि वे हृदय से सत्य की विजय चाहते हैं। वे इस युग की महान् आत्मा हैं। यदि उनसे पूछा जाये कि उनकी मृत्यु कैसे होगी तो वे तुरन्त बता देंगे। निदान माता कुन्ती द्वारा प्रार्थना करने पर पितामह ने बताया—
कुन्ती ! मैं वीर हूँ मैं नारी पर शस्त्रप्रहार नहीं करूँगा। यदि शिखण्डी (नपुंसक) मुझ पर प्रहार करे, तो उस पर भी वार नहीं करूँगा।

दूसरे दिन जब घमासान युद्ध हो रहा था, तब अर्जुन शिखण्डी को आगे खड़ा करके बाण बरसाने लगा। आगे-आगे शिखण्डी बाण चला रहा था। भीष्म पितामह कह रहे थे—“ये बाण तो अर्जुन के हैं। परन्तु सामने तो शिखण्डी युद्ध कर रहा है।” पितामह का शरीर बाणों से छलनी-छलनी हो गया वे घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। अर्जुन ने शंख बजाकर अपनी विजय की घोषणा कर दी।

इच्छा मृत्यु

महात्मा व्यास ने महाभारत में लिखा है कि बाल-ब्रह्मचारी होने के कारण भीष्म पितामह इच्छा मृत्यु थे। मृत्यु उनके समीप नहीं फटक सकती थी। यद्यपि उनका

शरीर छलनी हो गया था, तो भी वे छः मास तक जीते रहे । उनकी आज्ञा से वहीं युद्ध भूमि के एक ओर बाणों के बिछौने पर उन्हें लिटाया गया । वे चाहते थे कि सूर्य उत्तरायण आने पर ही अपना शरीर छोड़ें । सारा दिन धर्म जिज्ञासुओं का ताँता लगा रहता था ।

बुरे अन्न का प्रभाव

एक दिन महारानी द्रौपदी पाण्डवों के साथ पितामह के उपदेश सुनने के लिए गई । धर्म की चर्चा सुन कर द्रौपदी ने कहा—पितामह, आपको स्मरण है, जब मुझे कौरवों की सभा में अपमानित किया जा रहा था, तब मैंने आपसे कुछ प्रश्न किए थे । आपने यह कह कर टाल दिया था—देवी ! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है । अब आप धर्म के सूक्ष्म उपदेश दे रहे हैं । तब पितामह ने दुःखित होकर कहा—“बेटी, मैंने दुर्योधन का अन्न खाया था अतः मेरा मन पापी हो गया था । अब बाणों से मेरा पाप भरा रुधिर निकल चुका है । अब मेरा मन स्वच्छ है । यह बात तुम मान लो कि पापी का अन्न खाने वाले की बुद्धि भी पाप से भर जाती है ।”

—: ० :—

पाठ 25

प्रार्थना मन्त्र

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।

यद्भद्रं तन्न आसुव ॥1॥

हे सकल जगत को उत्पन्न करने वाले परमात्मा !
हमारी सारी बुराइयों और दुःखों को दूर करो और जो
कल्याणकारी पदार्थ हैं उन्हें हमें प्राप्त कराइए ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तवाग्रे

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्

सदाधार पृथ्वी द्यामुतेमाम्

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥2॥

वह परमात्मा प्रकाश स्वरूप हैं । उत्पन्न हुए
जगत का वही एक स्वामी है । वह जगत के उत्पन्न
होने से पहले भी विद्यमान था उसी के लिए करें ।

यः आत्मदा बलदा यस्य

विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः

यस्यच्छाया अमृतं यस्य मृत्युः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जो आत्मा ज्ञान और आत्मा को बल देने वाला है जिसकी सब उपासना करते हैं और जिसकी छाया (आसरा) मोक्ष देने वाली है, जिसकी आज्ञा न मानना मृत्यु का कारण है, हम सब उसी परमात्मा की उपासना करें ।



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri